शैक्षणिक संदर्भ

वर्ष: 19 अंक 106 (मूल क्रमांक 163)
मार्च-अप्रैल 2026 मूल्य: ₹ 50.00

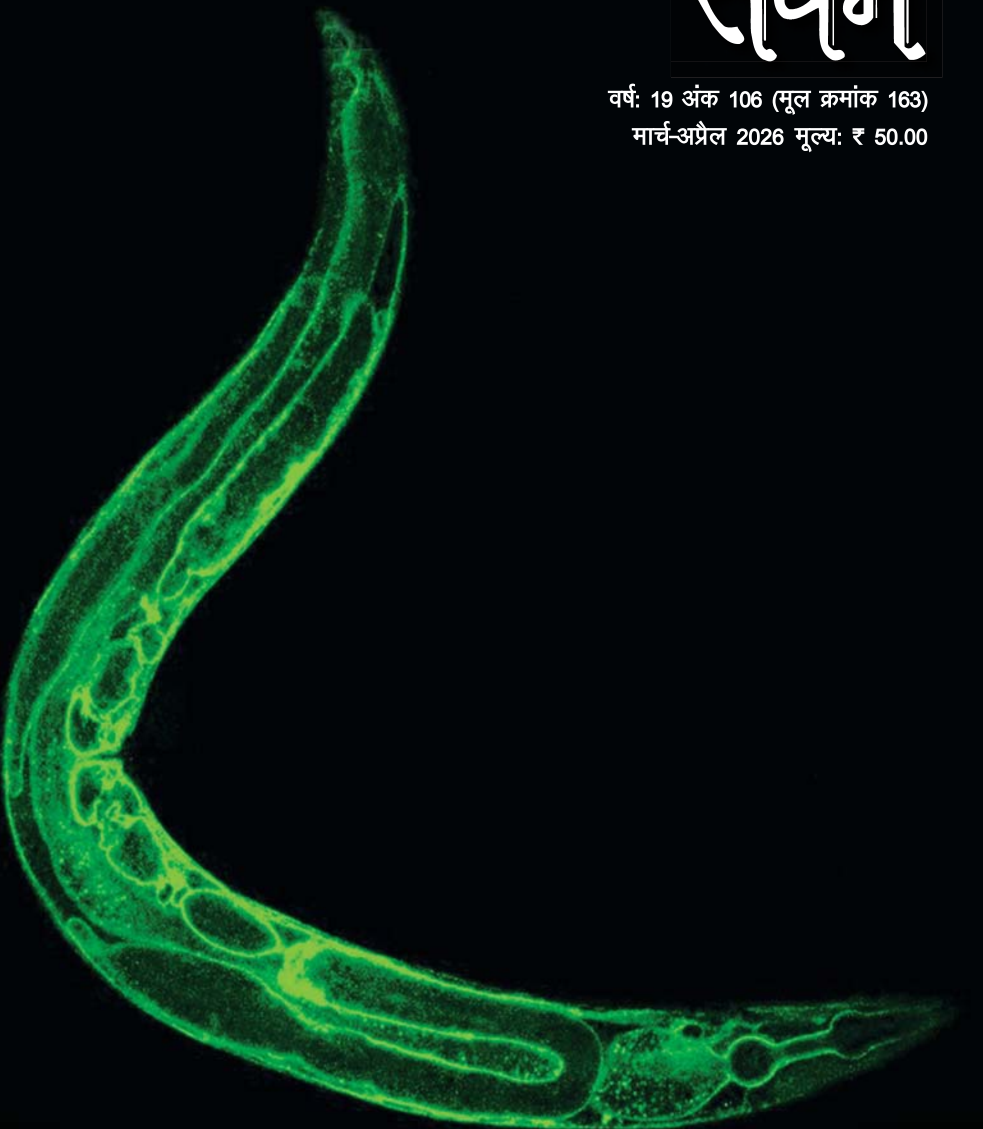

सम्पादन
राजेश खिंदरी
माधव केलकर

सहसम्पादक
पारुल सोनी

सम्पादकीय सहयोग
हिमांशु बावनकर
अतुल वाधवानी

सम्पादकीय सलाहकार
सुशील जोशी
उमा सुधीर

आवरण: राकेश खत्री

वितरण: झनक राम साहू

सहयोग: कमलेश यादव

शैक्षणिक
संदर्भ

वर्ष: 19 अंक 106 (मूल क्रमांक 163)
मार्च-अप्रैल 2026 मूल्य: ₹ 50.00

मूल्य: ₹ 50.00

एकलव्य फाउण्डेशन
जमनालाल बजाज परिसर
जाटखेड़ी, भोपाल-462 026 (म.प्र.)
फोन: +91 755 297 7770, 71, 72, 4200944
www.sandarbh.eklavya.in
सम्पादन: sandarbh@eklavya.in
वितरण: circulation@eklavya.in

अब *संदर्भ* आप तक पहुँचेगी मैग्ज़ीन पोस्ट से।

सदस्यता शुल्क	एक साल (6 अंक)	तीन साल (18 अंक)	आजीवन
	450.00	1200.00	10,000.00

मुखपृष्ठ: हरे फ्लोरोसेंट प्रोटीन की मदद से दमकते *सी. एलेगेन्स* की तस्वीर। यह तस्वीर लुंड यूनिवर्सिटी की गोपाल लैब से योहाना फार्ले और मैडेलिन श्वाल्बे द्वारा खींची गई है। महज़ एक मिली लम्बाई का यह जीव आधुनिक विज्ञान कार्य में एक मील का पत्थर है। कारण बहुत सरल-सा है – इसके शरीर की पारदर्शिता। इसी पारदर्शिता के सदके, इसके अंगों और एक-एक कोशिका पर गहन शोध किए जा सकते हैं। किस-किस तरह के शोध और कितने गहन, यह जानने के लिए पढ़िए पृष्ठ 16 पर किशोर पंवार और सुशील जोशी का लेख।

कवर 3: माधव केलकर द्वारा खींची गई, एकलव्य के गेस्ट हाउस की दीवार पर बनते सतरंगे गोलाकार इन्द्रधनुष की तस्वीर। सूरज की रोशनी का कुछ इस तरह मुड़ना कि अनेक रंग बिखर जाएँ – सचमुच हैरतअंगेज़ है। मगर यह सब आखिर होता कैसे है? दीवार पर तो तब भी कील सहारा दे सकती है, पर आसमान में टंगा इन्द्रधनुष गिर क्यों नहीं जाता?! ऐसे ऊलजलूल सवालों के जवाब पढ़िए पृष्ठ 05 पर, माधव के लेख में।

पिछला आवरण: देवेन्द्र सासने द्वारा खींची गई नरेश दधिच की तस्वीर। ब्लैक होल, डार्क एनर्जी, और अनगिनत आयाम – ब्रह्माण्ड के रहस्यों की उलझी हुई कड़ियाँ हैं। मगर इन कड़ियों को सुलझाने की दिशा में नायाब योगदान दिया है भारत के मशहूर वैज्ञानिक नरेश दधिच ने। उनके इन्हीं योगदानों और ब्रह्माण्ड के रहस्यमयी सत्यों की झलक पाने के लिए पढ़िए विनय आर.आर. का यह लेख, पृष्ठ 29 पर।

यह अंक त्रिवेणी एजुकेशनल ट्रस्ट के वित्तीय सहयोग से प्रकाशित किया जा रहा है।

LINK : कवर 1 - https://www.monash.edu/discovery-institute/news-and-events/news/2024-articles/worm-model-gives-insight-into-healthy-reproductive-system-development
कवर 4 - https://web.iucaa.in/tributes/nkdadhich/assets/img/life/life-5.jpeg

इस अंक में उन चित्रों के स्रोत जिनके बारे में चित्र या लेख के साथ उल्लेख नहीं है, इंटरनेट की विविध वेबसाइट हैं।

विज्ञान क्या है? टेक्नोलॉजी का विज्ञान के साथ क्या रिश्ता है? ज्ञान हासिल करने के दूसरे तरीकों और विज्ञान में क्या फर्क है? विज्ञान और छद्म-विज्ञान के बीच कैसी खाइयाँ हैं? एआई की सीमाएँ और सम्भावनाएँ क्या हैं?

इस किताब में सरल भाषा में ऐसे तमाम सवालों की पड़ताल के साथ-साथ विज्ञान की बुनियादी संरचना, उसके दार्शनिक पहलुओं और उससे जुड़ी बहसों पर विस्तृत चर्चा की गई है।

आगामी प्रकाशन

विज्ञान के साथ साहित्य, धर्म आदि दीगर बौद्धिक व सामाजिक गतिविधियों पर भी चर्चा है। साथ ही, विज्ञान और टेक्नोलॉजी के मानविकी के साथ सम्बन्धों और इनके बीच के तनावों को भी स्पष्ट किया गया है। आस्था के सवाल पर भी चर्चा की गई है और विज्ञान के सन्दर्भ में इसकी जटिलताओं पर रोशनी डाली गई है।

तकनीकी बदलावों की रफ्तार और इन्सानी वजूद पर उसके गहरे असर के बावजूद विज्ञान और टेक्नोलॉजी के बारे में आम समझ और बातचीत सीमित ही है। ऐसे में लाल्टू की यह किताब एक बड़ी कमी को पूरा करने की दिशा में ज़रूरी कदम है। विद्यार्थियों, शिक्षकों, शोधकर्ताओं और आम पाठकों, सभी के लिए बेहद उपयोगी व ज़रूरी किताब।

विशेष लाइब्रेरी संस्करण हार्डबाउंड में भी उपलब्ध!! मूल्य: ₹400

आज ही अपनी प्रति बुक करें:

एकलव्य

एकलव्य फाउंडेशन
जमनालाल बजाज परिसर, जाटखेड़ी, भोपाल - 462 026 (मप्र)
फोनः **+91 755 297 7770-71-72;** ईमेलः **pitara@eklavya.in**
www.eklavya.in | www.eklavyapitara.in

इन्द्रधनुष ज़मीन पर गिर क्यों नहीं जाता?

इन्द्रधनुष कैसा लगता है आपको? क्या आप उसे छूने के लिए कभी उसकी ओर दौड़े हैं? हमारी कई पाठ्यपुस्तकों में इन्द्रधनुष जैसी हैरतअंगेज़ परिघटनाओं को अक्सर अति-सरलीकृत ढंग से, और कभी-कभी गलत तरह से, समझा दिया जाता है, जिसे बच्चों को ऐसे ही रट लेना पड़ता है। मगर, माधव मानते हैं कि ऊलजलूल जिज्ञासाओं का अपना महत्व होता है। और इस लेख में, वे इन्द्रधनुष के विज्ञान और उससे जुड़ी ऊलजलूल रंगतों को पेश करते हैं।

05

पाँच दिन, चार रातें - शाहपुर विज़िट

किस्सा है यह शाहपुर में अनूप के खेत का, जहाँ आनंद निकेतन और मुस्कान संस्था के बच्चे-बड़े पाँच दिन और चार रातें बिताने पहुँचे थे। इस बीच क्या-कुछ नहीं घटा – टिफी नाम की कुतिया से दोस्ती, करंज के पेड़ के नीचे बैठकें, नदी-पहाड़ की सैर, मिलकर खाना पकाना, भूत का सताना, महुआ का सड़ना, चूज़ों की चीं-चीं, और ढेर सारे खेल व गीत। अनिल सिंह की लेख श्रृंखला की इस कड़ी में आनन्द और मुस्कान की कोई कमी नहीं है, सचमुच!

63

शैक्षणिक संदर्भ

अंक-106 (मूल अंक-163), मार्च-अप्रैल 2026

इस अंक में

05 इन्द्रधनुष ज़मीन पर गिर क्यों नहीं जाता?
माधव केलकर

16 *सीनोरेब्डाइटिस एलेगेन्स* - एक शानदार मॉडल जीव
किशोर पंवार व सुशील जोशी

29 डार्क एनर्जी, ब्लैक होल और सुपर रेडिएंट बम
विनय आर.आर.

38 उस प्रतिभाशाली को सलाम
आमोद कारखानीस

45 सीखने के अवसर
अमित और जयश्री

63 पाँच दिन, चार रातें - शाहपुर विज़िट
अनिल सिंह

76 सामाजिक सुधारों का सिलसिला
प्रकाश कान्त

83 आलू की आँख: भाग 2
राजेश जोशी

93 ईश्वर की कहानियाँ
विष्णु नागर

94 दुकानों के सामने नींबू-मिर्च क्यों लटकाया जाता है?
सवालीराम

फॉर्म 4 (नियम-8 देखिए)

भारतीय प्रेस और नियतकालिक पत्रिका रजिस्ट्रीकरण अधिनियम,
2023 की धारा 4 (2) के अन्तर्गत
द्वैमासिक पत्रिका 'शैक्षणिक संदर्भ' से सम्बन्धित जानकारी

प्रकाशन स्थल :	भोपाल
प्रकाशन की अवधि :	द्वैमासिक
प्रकाशक का नाम :	टुलटुल बिस्वास
राष्ट्रीयता :	भारतीय
पता :	एकलव्य फाउण्डेशन, जमनालाल बजाज परिसर, जाटखेड़ी, भोपाल, म. प्र. 462026
मुद्रक का नाम :	मे. भण्डारी प्रेस
राष्ट्रीयता :	भारतीय
मुद्रण का स्थान :	ई-2/111, अरेरा कॉलोनी, भोपाल, म. प्र. 462016
सम्पादक का नाम :	राजेश खिंदरी
राष्ट्रीयता :	भारतीय
पता :	एकलव्य फाउण्डेशन, जमनालाल बजाज परिसर, जाटखेड़ी, भोपाल, म. प्र. 462026

उन व्यक्तियों के नाम और पते जिनका इस पत्रिका पर स्वामित्व है

नाम :	निदेशक, एकलव्य फाउण्डेशन
राष्ट्रीयता :	भारतीय
पता :	एकलव्य फाउण्डेशन, जमनालाल बजाज परिसर, जाटखेड़ी, भोपाल, म. प्र. 462026

मैं, टुलटुल बिस्वास, यह घोषणा करती हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

टुलटुल बिस्वास, एकलव्य फाउंडेशन, मार्च 2026

ऊलजलूल साइंस

इन्द्रधनुष ज़मीन पर गिर क्यों नहीं जाता?

माधव केलकर

बचपन से देखते रहे इन्द्रधनुष को लेकर हमारी कई तरह की जिज्ञासाएँ होती हैं। और इन जिज्ञासाओं के जवाब के लिए हमारी निर्भरता केवल पाठ्यपुस्तकों पर सीमित रहती है। लेकिन इन सबके जवाब पाठ्यपुस्तकों में मिल ही जाएँगे, ऐसा ज़रूरी नहीं है। पाठ्यपुस्तकें या सन्दर्भ पुस्तकें अक्सर अवधारणा का सरलीकरण करके, वायुमण्डल में ठहरी हुई पानी की एक या दो बूँदों के मार्फत इन्द्रधनुष के बनने को समझाने की चेष्टा करती हैं। जबकि इन्द्रधनुष का निर्माण बूँदों के एक विशाल समूह से होता है। इस लेख में यह टटोलने की कोशिश की गई है कि यह सरलीकरण किस हद तक एक सही समझ विकसित करता है और इसकी सीमाएँ क्या हैं।

बचपन में जब मैंने इन्द्रधनुष देखा तो आसमान में रंगीन पट्टा देखकर अच्छा लगा। आसमान में यह रोज़ तो नहीं दिखता, आज कहाँ से आ टपका - जैसे सवाल मन में ज़रूर उठे, लेकिन शायद पूछा किसी से नहीं।

उस दिन इन्द्रधनुष देखने के बाद दिमाग में एक खयाल ज़रूर आया कि क्या मैं साइकिल लेकर इस रंगीन पट्टे के नीचे से गुज़र सकता हूँ? तब मुझे पूरा यकीन था कि इतने विशाल इन्द्रधनुष के नीचे से साइकिल लेकर जाना मुमकिन है। आप भी कहेंगे, क्या ऊलजलूल खयाल है!

बच्चे का वो अद्भुत सवाल

छह-सात साल पहले, इसी तरह के एक और ऊलजलूल खयाल से मेरा सामना हुआ। मैं स्कूल विज़िट के दौरान एक माध्यमिक शाला में गया था। वहाँ शिक्षक ने बच्चों से मेरा परिचय करवाया। फिर हमने विज्ञान के कुछ प्रयोग करके देखे और उन पर बातचीत भी की। हमने दर्पण पट्टी और पानी की कटोरी से दीवार पर रंगीन पट्टा बनाने वाला एक छोटा-सा प्रयोग किया। उस रंगीन पट्टे से बात आसमान में दिखने वाले इन्द्रधनुष तक जा पहुँची। सभी बच्चों ने इन्द्रधनुष देखा हुआ था। इन्द्रधनुष

के रंगीन पट्टे में रंगों का क्रम भले ही किसी को याद न हो लेकिन आसमान में मेहराब (आर्च) की तरह फैलाव उन्हें बखूबी याद था। एक बच्चे ने कहा, "ऐसा लग रहा था जैसे गाँव से थोड़ा बाहर ही है। हमारे सामने मकान या पेड़ न होते तो हम उसे ज़मीन छूते हुए देख पाते।" फिर एक-दो बच्चों ने पूछा, "यह बनता कैसे है?"

खैर, मैंने बच्चों को आसमान में इन्द्रधनुष बनने के बारे में बताने की कोशिश की। बच्चों को विज्ञान की कक्षा में तब तक प्रकाश का परावर्तन, अपवर्तन और वर्ण-विक्षेपण पढ़ाया नहीं गया था। मुझे लगा, एक बार और तैयारी करके आना चाहिए। तभी एक बच्चे ने कहा, "एक सवाल पूछना था – आपने बताया था कि इन्द्रधनुष बारिश की बूँदों से बनता है। बारिश में बूँदें तो ज़मीन पर गिर जाती हैं, फिर इन्द्रधनुष उन बूँदों के साथ नीचे क्यों नहीं गिर जाता?"

अगले कुछ पल मैं बच्चे को देखता रह गया। फिर खुद को मानो होश में लाया और मुस्कुराने की कोशिश करते हुए बोल पड़ा, "मैं जल्द पता करके बताऊँगा। अभी तो मैं भी नहीं जानता।"

घर लौटा। मन में बेचैनी थी। कैसे उस बच्चे को बताया जाए कि पानी की बूँदें तो भौतिक वस्तु हैं। इसलिए वे बूँदें गिरती हैं और हम उन्हें गिरते हुए देख भी पाते हैं व छू भी पाते हैं। लेकिन इन्द्रधनुष कोई भौतिक वस्तु नहीं है। इसलिए उसे छूकर या पकड़कर देख पाना मुमकिन नहीं है। यदि सूरज के सामने अचानक कोई बादल आ जाए तो इन्द्रधनुष गायब हो जाएगा, भले ही इन्द्रधनुष को बनाने वाली पानी की भरपूर बूँदें हवा में मौजूद हों। या ऐसा भी हो सकता है कि जहाँ इन्द्रधनुष दिख रहा था, वहाँ पानी की बूँदों की संख्या कम हो जाए और इन्द्रधनुष धुँधला हो जाए या गायब होने लगे। मतलब, इन्द्रधनुष धुँधला पड़ सकता है, दिखाई देना भी बन्द हो सकता है, लेकिन बूँदों के साथ उसका नीचे गिरना मुमकिन नहीं है। बच्चों को किस तरह बताया जाए कि बारिश के दौरान हवा में छोटी-बड़ी, कई आकार की बूँदें होती हैं। बड़ी बूँदें तो ज़मीन पर गिरती हैं, लेकिन काफी सारी महीन या छोटी बूँदें हवा में ही तैरती रहती हैं। इन महीन बूँदों की वजह से ही इन्द्रधनुष का बनना सम्भव हो पाता है। बच्चे के मन में उठा सवाल स्वाभाविक था, लेकिन उसे समझा पाना थोड़ा मुश्किल ही होने वाला था।

इन बच्चों के साथ काम करते हुए मैंने पाया कि बहुत-से बच्चों को सरल रेखा पर बताए गए किसी बिन्दु पर 40 या 42 डिग्री का कोण बनाने में भी दिक्कत थी। छठवीं-सातवीं कक्षा के कई बच्चे चाँदे (प्रोटेक्टर) के इस्तेमाल में सहज नहीं थे। निर्देशित बिन्दु पर चाँदा कैसे रखना है, कहाँ

से नापना है - इसमें ही गफलत में पड़ जाते थे। ऐसे में, बच्चों को इन्द्रधनुष में विविध रंगों की किरणों से बनने वाले कोण को कैसे समझाया जाए? यह मैं चाहकर भी नहीं बता पाया कि सूरज की किरणों की उपस्थिति एवं, बूँदों और देखने वाले के किसी खास कोण के आसपास होने पर ही इन्द्रधनुष बनने की, और दिखाई देने की सम्भावना बनती है। इन तीनों के उस खास कोण पर न होने से हवा में मौजूद बूँदें, पानी की सामान्य बूँदें ही रह जाती हैं।

लेकिन बच्चे के इस सवाल की वजह से मैं इन्द्रधनुष को लेकर अपनी समझ में आए बदलावों को देखने की कोशिश कर पाया। साथ ही, मैं यह भी समझ पाया कि पाठ्यपुस्तकों में इन्द्रधनुष के बारे में क्या-क्या और किस तरह बताया जाता है। इस सब चहल-कदमी से कुछ मुद्दे सामने आए जो इस प्रकार हैं -

- माध्यमिक और हायर सेकेंडरी स्तर की ज़्यादातर पाठ्यपुस्तकों में इन्द्रधनुष के बारे में सरलीकृत ढंग से अत्यन्त संक्षेप में बता दिया जाना।
- द्विआयामी चित्र के माध्यम से अवधारणा को समझाने का प्रयास करना।
- अवधारणा को समझाने के लिए बनाए गए चित्रों में ऐसा आभास देना कि एक ही बूँद से सात रंग बाहर निकलकर इन्द्रधनुष बनाते हैं। और कई बार इन बूँदों की तुलना प्रिज़्म से कर देना।
- हवा में काफी ऊपर ठहरी हुई बूँद या बूँदों से ही इन्द्रधनुष बनता है, ऐसा आभास देना। इन्द्रधनुष के ज़मीन को छूते सिरों के बारे में कुछ न कहना।
- अवधारणात्मक समझ के लिए इन्द्रधनुष बनाकर देखने सम्बन्धी कोई गतिविधि न करवाना, या कोई टीएलएम न बनवाना।

हम इनमें से कुछ मुद्दों पर यहाँ चर्चा करेंगे।

इन्द्रधनुष की पाठ्यपुस्तकीय व्याख्या

आम तौर पर इन्द्रधनुष को लेकर हम सभी की अवधारणात्मक समझ पाठ्यपुस्तकों को पढ़कर या बाद में रेफरेंस बुक पढ़कर ही बनती है। मैंने सबसे पहले मध्यप्रदेश पाठ्यपुस्तक निगम की पुरानी पाठ्यपुस्तकों और एनसीईआरटी की पाठ्यपुस्तकों पर नज़र दौड़ाई।

माध्यमिक कक्षा की विज्ञान की किताब में इन्द्रधनुष के बारे में एक चित्र और एक पैराग्राफ दिया गया था (देखिए चित्र-1)।

हायर सेकेंडरी स्तर पर हवा में ठहरी हुई बूँद या बूँदों वाला डायग्राम और प्राथमिक तथा द्वितीयक इन्द्रधनुष के बारे में सिर्फ बुनियादी

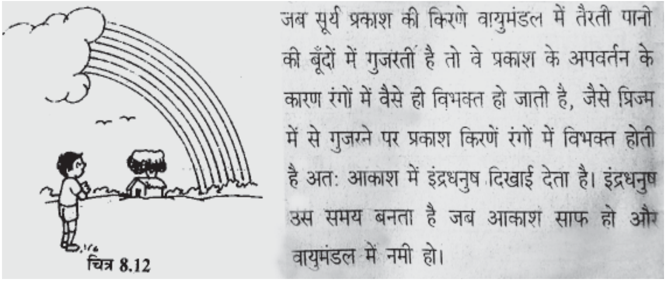
जब सूर्य प्रकाश की किरणे वायुमंडल में तैरती पानी की बूँदों में गुजरती है तो वे प्रकाश के अपवर्तन के कारण रंगों में वैसे ही विभक्त हो जाती है, जैसे प्रिज्म में से गुजरने पर प्रकाश किरणें रंगों में विभक्त होती है अत: आकाश में इंद्रधनुष दिखाई देता है। इंद्रधनुष उस समय बनता है जब आकाश साफ हो और वायुमंडल में नमी हो।

चित्र 8.12

चित्र-1: *कक्षा-8 की विज्ञान की किताब में इन्द्रधनुष।*

जानकारी दी गई है। स्नातक स्तर पर भी हायर सेकेंडरी की सामग्री का दोहराव ही होता है (देखिए चित्र-2)।

ज़्यादातर किताबों में आम तौर पर किरणों वाला एक डायग्राम होता है - एक बूँद, जिसमें से होकर सूरज की एक किरण अवलोकनकर्ता तक पहुँचती है। इस चित्र में प्राथमिक इन्द्रधनुष के बनने को समझाते हुए किरणों के बीच 40 या 42 डिग्री आदि भी लिखा होता है। इसी तरह चित्र में द्वितीयक इन्द्रधनुष के बनने को समझाने के लिए 50 या 53 डिग्री लिखा हुआ है। किरणों वाले ये चित्र थोड़े जटिल हैं। कभी 40-42 डिग्री का कोण आपतित और अपवर्तित किरणों के बीच बताया जाता है, तो कभी अपवर्तित किरण और धरातल के बीच बनने वाले कोण के रूप में दर्शाया होता है। किरणों के इन चित्रों को देखते-देखते मुझे क्या, किसी को भी यही विश्वास होता चला जाएगा कि एक बूँद से निकली किरणों से ही सात रंग का वर्णक्रम (इन्द्रधनुष) बनता है। कुछ पाठ्यपुस्तकों में लिखा भी होता था कि पानी की बूँद प्रिज़्म की तरह सफेद प्रकाश किरणों को सतरंगी वर्णक्रम में तब्दील करती है।

वैसे देखा जाए तो हम सबने प्रिज़्म के साथ अपवर्तन का प्रयोग करते हुए, प्रकाश किरणों को दो बार अपवर्तन के साथ प्रिज़्म के आर-पार

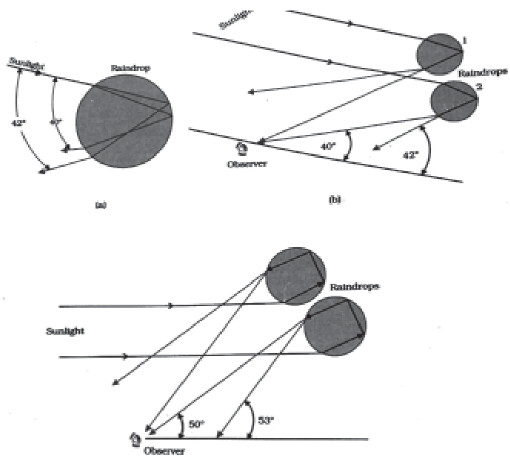

चित्र-2: *कक्षा-12 की भौतिकी भाग-2, एनसीईआरटी की किताब में इन्द्रधनुष।*

जाते हुए देखा है। पानी की बूँदों में भी दो बार अपवर्तन होता है लेकिन पानी की बूँदों में आकार की वजह से काफी सारा प्रकाश आन्तरिक परावर्तन और अपवर्तन की प्रक्रिया से गुज़रते हुए दर्शक तक पहुँचता है।

पानी की कटोरी से इन्द्रधनुष

एकलव्य में काम करते हुए जब मैंने होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम (होविशिका) के तहत माध्यमिक शालाओं में जाकर पहली बार एक दर्पण पट्टी और पानी की कटोरी से सतरंगी वर्णक्रम बनाकर देखा, तो मन को बहुत सुकून मिला। मेरे साथ 10-12 साल के बच्चे थे जो सहजता के साथ सतरंगा वर्णक्रम बना रहे थे। पानी को हिला-डुलाकर वर्णक्रम को हिचकोले खाते देखकर खुश हो रहे थे।

इस प्रयोग की व्याख्या करते हुए हमारे एक साथी बता रहे थे कि प्रिज़्म की तरह ही अपवर्तन के कारण यहाँ वर्णक्रम बन रहा है। शायद ऐसी व्याख्याओं की वजह से भी इन धारणाओं को बल मिलता है कि सात रंग बनाने के लिए पानी की एक बूँद ही पर्याप्त है।

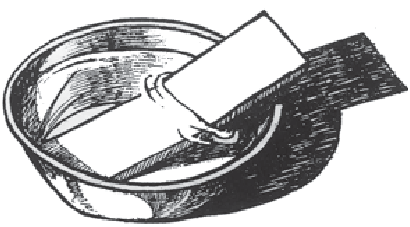

__चित्र-3:__ कटोरी, पानी, दर्पण पट्टी और सूर्य प्रकाश की मदद से इन्द्रधनुष बनाना।

पानी की बूँदों की लोकेशन

अब अगले मुद्दे पर आते हैं - भ्रम का दूसरा बिन्दु है, पानी की बूँद से निकलने वाली किरणें और पानी की बूँदों की स्थिति। आम तौर पर पाठ्यपुस्तकों में या कुछ रेफरेंस पुस्तकों में ऐसे भी डायग्राम होते थे, जिनमें आसमान में ठहरी हुई एक बूँद से ही लाल और बैंगनी रंग की दो किरणें अवलोकनकर्ता तक पहुँचती हुई दिखाई जा रही हैं। कुछ चित्रों में ज़रूर दो बूँदें दिखाई जाती थीं जिनमें से एक बूँद से लाल रंग की किरण और दूसरी बूँद से बैंगनी रंग की किरण अवलोकनकर्ता तक आती है। लेकिन इन चित्रों के साथ कहीं भी यह नहीं लिखा होता कि हरेक रंग की किरण अलग-अलग बूँद से अवलोकनकर्ता तक पहुँच रही है। इसलिए यह भ्रम बना रहता है कि अवलोकनकर्ता को सात रंग कैसे दिखाई देते हैं।

बूँदें हमेशा काफी ऊँचाई पर लटकी हुई या ठहरी हुई क्यों दिखाते हैं, जबकि कई बार इन्द्रधनुष ज़मीन को छूता हुआ भी दिखाई दे जाता है? ज़्यादातर पाठ्यपुस्तकों और सन्दर्भ पुस्तकों में पानी की बूँदें हवा में ऊपर लटकी हुई ही दिखाई जाती हैं। मैंने

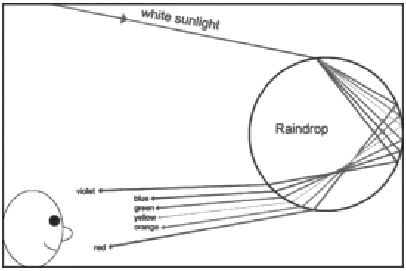

चित्र-4: एक ही बूँद से निकलती सातों रंग की किरणें।

एक किताब में देखा कि रेने देकार्त (1596-1650 ईस्वी) ने भी इन्द्रधनुष के बनने को लेकर अपने विचार लिखने के साथ प्राथमिक और द्वितीयक इन्द्रधनुष का रेखाचित्र बनाया था (देखिए चित्र-5)। उनके समय में भी अवलोकनकर्ता के लिए आसमान में काफी ऊपर ठहरी हुई या तैरती हुई बूँदों के समूह के मार्फत ही इन्द्रधनुष बनता दिखाया जा रहा था।

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि चूँकि इन्द्रधनुष क्षैतिज से काफी ऊपर दिखाई देता है, शायद इसलिए चित्र बनाते वक्त ऐसी धारणा बनी हो कि काफी ऊँचाई की बूँदों से अपवर्तित किरणों को दिखा देने से, सबको इन्द्रधनुष बनने की वजह समझ में आ सकती है।

इसी तरह, मुझे यह काफी समय तक स्पष्ट नहीं था कि इन्द्रधनुष के दोनों सिरे, जो आम तौर पर ज़मीन के काफी करीब दिखते हैं, जिनसे वे बनते हैं वे पानी की बूँदें 40 डिग्री से 42 डिग्री का कोण किस तरह बनाती होंगी। हमने किरणों के जो भी रेखाचित्र देखे थे, उन सब में बूँदें आसमान में काफी ऊपर लटकी दिखाई जाती थीं। ज़मीन के पास की बूँदों में सूरज की किरणें किस तरह प्रवेश करेंगी और अपवर्तित होकर किस तरह बाहर निकलकर अवलोकनकर्ता की आँखों तक पहुँचेंगी - इसका कोई डायग्राम देखा ही नहीं था। ऐसा कोई डायग्राम मैंने भी कभी बनाकर नहीं देखा।

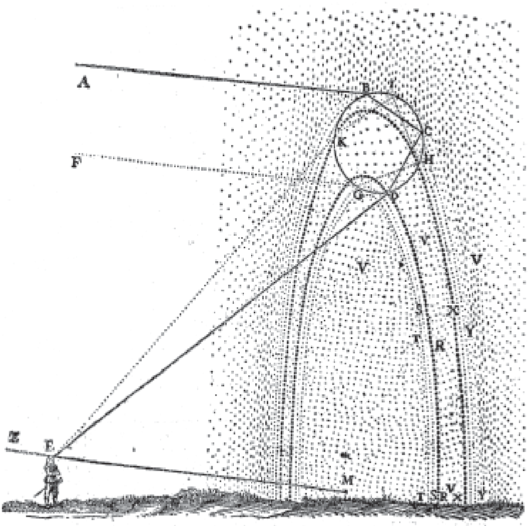

चित्र-5: रेने देकार्त द्वारा सन् 1637 में प्राथमिक और द्वितीयक इन्द्रधनुष बनने को लेकर बनाया गया रेखाचित्र।

रंग अलग-अलग बूँदों से

काफी समय बाद मुझे यह स्पष्ट हुआ कि इन्द्रधनुष के सातों रंग अलग-अलग बूँदों से आते हैं। वे बूँदें अवलोकनकर्ता से 40-41-42 डिग्री का कोण बनाते हुए मौजूद होती हैं। हालाँकि, हरेक बूँद से अपवर्तन के बाद सातों रंग की किरणें बाहर निकलती हैं लेकिन अवलोकनकर्ता की आँखों तक एक रंग की किरण ही पहुँच रही होती है। बाकी छह रंग की किरणें अवलोकनकर्ता की आँखों तक न पहुँचकर, कहीं दूर से निकल जाती हैं। इसलिए अवलोकनकर्ता को हरेक बूँद से सातों रंग दिखाई नहीं देते। उदाहरण के लिए, 42 डिग्री पर मौजूद बूँदों से हमारी आँखों तक सिर्फ लाल रंग की किरणें पहुँच रही होती हैं, तो 40 डिग्री पर मौजूद बूँदों से सिर्फ बैंगनी रंग की किरणें पहुँच रही होती हैं। बाकी रंग इन दोनों के बीच में मौजूद बूँदों से अपवर्तित होकर अवलोकनकर्ता तक पहुँच रहे होते हैं।

अभी तक हमने इन्द्रधनुष को लेकर जो बातचीत की है, उसमें एक प्रमुख मुद्दा था कि टू-डायमेंशनल (द्विआयामी) चित्रों के मार्फत पानी की बूँदें, अपवर्तित किरण, परावर्तित किरण, अवलोकनकर्ता वगैरह दिखाने होते हैं। द्विआयामी चित्रों से एक हद तक समझ तो बनती है, लेकिन इन चित्रों से अक्सर भ्रम भी बढ़ते हैं। जैसे कि इन चित्रों से ऐसा प्रतीत होता है कि इन्द्रधनुष एक द्विआयामी चाप है, जबकि हम जो इन्द्रधनुष देखते हैं, वह वास्तव में बिखरे हुए (डिस्पर्सड) प्रकाश का त्रिआयामी शंकु (cone) है। अलग-अलग रंग की किरणों को हमारी आँखों तक बिखेरने वाली सभी बूँदें शंकु के आकार में जमी होती हैं। जब हम आसमान में इन्द्रधनुष देख रहे होते हैं, तब हमें भी इस बात का एहसास नहीं होता कि इस अर्धचाप

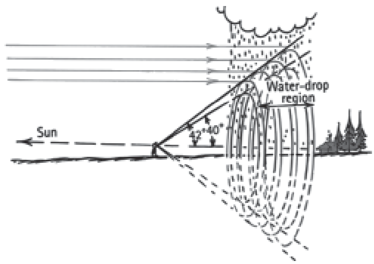

चित्र-6

जैसे आकार में गहराई भी मौजूद हो सकती है।

यह शंकु एक के पीछे एक अलग-अलग परतों में मौजूद पानी की बूँदों से बना होता है। इन्द्रधनुष को देखते हुए आपकी नज़र बूँदों के उस समूह को भेद लेती है जिनसे आपका वाला इन्द्रधनुष बन रहा है। आपके पास खड़े व्यक्ति को दिखाई देने वाला इन्द्रधनुष फर्क बूँदों के समूह से बनेगा और आपके इन्द्रधनुष से थोड़ा अलग होगा। यदि किसी स्थान पर इन्द्रधनुष देखती हुई 50 लोगों की भीड़ खड़ी हो, तो उन सबका अपना-अपना फर्क इन्द्रधनुष होगा। आपने

एक कमरे के अन्दर का इन्द्रधनुष

एक स्थानीय पहल के सिलसिले में *एकलव्य* ने पटना में ऑफिस एवं गेस्ट हाउस बनाया था। यह गेस्ट हाउस अज़मत भाई के मकान की तीसरी मंज़िल पर था। दरवाज़ा पूरब की ओर था इसलिए सुबह तीन-चार घण्टे तक सूरज की रोशनी दरवाज़े पर बनी रहती थी। इस दरवाज़े पर एक पीप-होल लेंस लगा था ताकि भीतर से झाँककर देखा जा सके कि दरवाज़े के बाहर कौन खड़ा है।

रोज़ सुबह जब धूप बन्द दरवाज़े के पीप-होल लेंस पर पड़ती थी, तो कमरे के भीतर दरवाज़े के सामने वाली दीवार पर एक वृत्ताकार/चकतीनुमा सतरंगा इन्द्रधनुष बनता था (देखिए फोटो)। अगले तीन घण्टे में यह सतरंगी चकती अपनी जगह बदलती हुई, दरवाज़े के पास की दीवार तक पहुँच जाती थी। तब यह इन्द्रधनुष वृत्ताकार से अण्डाकार हो जाता था। यह क्यों बनता होगा, कैसे बनता होगा - इसके बारे में आप भी सोचिए।

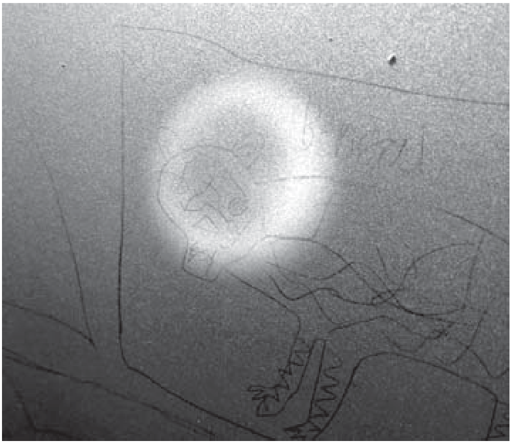

फोटोः माधव केलकर।

चित्र-7: पटना गेस्ट हाउस का इन्द्रधनुष।

शायद कभी गौर किया होगा कि यदि आप इन्द्रधनुष को देखते हुए चल रहे हों, तो आपका इन्द्रधनुष भी आपके साथ चलता हुआ प्रतीत होता है। अब तक की चर्चा के आधार पर यह समझना मज़ेदार है न कि आपके साथ चलता हुआ इन्द्रधनुष हर पल एक नया इन्द्रधनुष होता है। फिर भी, आप इन्द्रधनुष के किसी छोर तक नहीं पहुँच पाते। इसलिए जो इन्द्रधनुष आपको दिखाई देता है, उसका पीछा करना, उसकी ओर दौड़ना या साइकिल चलाकर वहाँ तक पहुँचने की कोशिश करना शायद कल्पनालोक में ही सम्भव है।

* * *

मैंने लेख की शुरुआत में बच्चे के सवाल वाली जिस घटना का ज़िक्र किया है, उसके बाद मैंने इस बात पर सोचना शुरू किया। कुछ विचार आए, जिन्हें आज़माकर देखने की

कोशिश की। कुछ खास हासिल नहीं हुआ, लेकिन एक-दो आइडिया मुझे कुछ बेहतर लगे जिन्हें आपके साथ साझा कर रहा हूँ।

गत्ते का त्रिभुज बनाना

किसी गत्ते पर आधार रेखा खींचते हुए, इस रेखा के एक छोर पर 42 डिग्री का कोण बनाकर, रेखा खींच लीजिए और चित्र-8 में दिखाए अनुसार काटकर एक त्रिभुज बना लीजिए। इस त्रिभुज के आधार को किसी समतल सतह पर रखते हुए अपनी ओर संकरा सिरा (न्यूनकोण वाला सिरा) रखिए।

त्रिभुज का चौड़ा वाला हिस्सा अपने से दूर रखिए। मान लीजिए, यह चौड़ा हिस्सा वायुमण्डल में दूर तक फैला हुआ है और वायुमण्डल में हवा में तैरती हुईं, पानी की ढेर सारी महीन बूँदें उपस्थित हैं। सूरज आपके पीछे की ओर है। अब त्रिभुज को दाईं-बाईं ओर घुमाकर देखिए, आपको अर्धवृत्ताकार आकृति जैसा प्रतीत होगा। इस त्रिभुज को बीच-बीच में रोककर देखिए कि सूर्य की किरणें

चित्र-8

इस अर्धवृत्ताकर आकृति पर मौजूद बूँदों से अपवर्तित होकर किस तरह अवलोकनकर्ता तक पहुँच रही होंगी।

जब आप इस कोणनुमा युक्ति को अपने हाथों से बनाकर और चलाकर देखेंगे तो आपको भी यह समझ आ जाएगा कि इन्द्रधनुष त्रिआयामी रचना है, भले ही चित्रों में वह द्विआयामी दिखती हो। दूसरी बात, यह भी स्पष्ट हो सकेगा कि आसमान में ऊँचाई पर और धरातल के पास की पानी की बूँदों से सूरज की किरणें किस तरह अपवर्तित होकर अवलोकनकर्ता तक पहुँचती हैं।

यह गतिविधि इसलिए दिखाना महत्वपूर्ण हो सकता है ताकि बच्चों की एक मोटी-मोटी अपितु गहरी समझ विकसित होने लगे कि इन्द्रधनुष किस तरह हमें दिखाई देता है और इसका आकार अर्धवृत्ताकार क्यों होता है।

इन्द्रधनुष में देखने और समझने के लिए और भी कई पहलू हो सकते हैं, जैसे द्वितीयक इन्द्रधनुष, आसमान में दिखने वाले छोटे चाप वाले इन्द्रधनुष, जलप्रपात के आसपास दिखने वाले इन्द्रधनुष, बगीचे में पानी की फुहार से बनने वाला सतरंगा वृत्त आदि। इसके अलावा, वायुमण्डलीय प्रकाशिकी (एट्मॉस्फेरिक ऑप्टिक्स) को भी समझने का मौका मिलता है।

ऊलजलूल सवालों से शुरू करके एक बार फिर मेरे बचपन वाले उसी

सवाल पर इस लेख की चर्चा छोड़ रहा हूँ - क्या मुझे दिखाई दे रहे इन्द्रधनुष के नीचे से मैं साइकिल लेकर जा सकता हूँ?

वैसे मुझे पूरा यकीन है कि आप सवाल सुनते ही बोल पड़ेंगे...।

इन्द्रधनुष - इतिहास के आइने में

वैसे तो इन्द्रधनुष और इन्सान की जान-पहचान पुरानी है। हो सकता है, कई लोगों ने इसके बनने के सम्बन्ध में कुछ सोचा हो या कयास लगाए हों। लेकिन हमारे पास जो जानकारी है, उसके मुताबिक, इन्द्रधनुष के बनने के सम्बन्ध में प्रसिद्ध दर्शनशास्त्री अरस्तु (ईपू 384 से 322 ईपू) ने पहली बार कोई वैज्ञानिक अवधारणा देने की कोशिश की थी। उन्होंने इस बात को जान लिया था कि बारिश, धूप और इन्द्रधनुष में कोई करीबी रिश्ता है। उन्होंने एक विचार रखा कि सूरज की रोशनी जब बादलों पर पड़ती है, तो वह एक खास कोण से परावर्तित होती है, जिसकी वजह से ज़मीन पर खड़े व्यक्ति को आसमान में गोलाकार इन्द्रधनुष उपस्थित होने का एहसास होता है।

अरस्तु के बाद लगभग 500 सालों बाद इन्द्रधनुष का ज़िक्र 'अलेक्ज़ेंडर ऑफ अफ्रोडिसियस' नामक व्यक्ति ने किया। उनका यह अवलोकन था कि प्राथमिक तथा द्वितीयक इन्द्रधनुष के बीच का आसमान (बाकी आसमान की तुलना में) कालिमा लिए होता है। आज हम इस कम प्रकाशित हिस्से को 'अलेक्ज़ेंडर बैंड' के नाम से जानते हैं।

इसके तकरीबन हज़ार साल बाद यानी सन् 1266 में, रोजर बेकन ने इन्द्रधनुष से जुड़ी गणनाएँ करके देखीं और बताया कि प्राथमिक इन्द्रधनुष की कमान सूरज की किरणों से 42 डिग्री का कोण बनाती है और द्वितीयक इन्द्रधनुष की कमान 8 डिग्री ज़्यादा यानी 51 डिग्री का कोण बनाती है। बेकन ने यह भी बताया कि प्राथमिक इन्द्रधनुष की तुलना में द्वितीय इन्द्रधनुष में रंगों का क्रम उलटा होता है।

लेकिन ये रंग किस तरह बनते हैं, इनका क्रम उलटा क्यों होता है - ऐसे कई सवालों के जवाब अरस्तु की परिकल्पना से समझ पाना सम्भव नहीं था। सच बात तो यह है कि अरस्तु की यह धारणा कि 'इन्द्रधनुष प्रकाश के परावर्तन से बनता है' दरअसल सही नहीं थी।

सन् 1304 में जर्मन धर्मगुरु 'थियोडोरिक ऑफ फ्रीबर्ग' ने इन्द्रधनुष को लेकर एक नई परिकल्पना पेश की। सूर्य की किरणें जब पानी की बूँदों में अपवर्तित होती हैं, तो एक खास कोण बनाती हुई बाहर निकलती हैं जिसकी वजह से इन्द्रधनुष बनता है। थियोडोरिक ने सिर्फ विचार ही पेश नहीं किया बल्कि इसे साबित करने के लिए अपने स्कूल के मैदान में काँच के गोल बर्तन में पानी भरकर, उसे धूप में रखा। ऐसा करने पर उन्होंने देखा कि सूरज की किरणें सिर्फ परावर्तित ही नहीं होतीं, बल्कि पानी में घुसकर अपवर्तित भी होती हैं और रंगीन किरणों में तब्दील

हो जाती हैं। उन्होंने यह भी देखा कि अपवर्तन के बाद ये किरणें एक खास दिशा में पानी से बाहर निकलती हैं। थियोडोरिक के अनुसार, बादलों में उपस्थित पानी की बूँदें गोल काँच के बर्तन में रखे पानी की तरह प्रकाश किरणों का अपवर्तन करती हैं।

रेने देकार्त (सन् 1596-1650) ने अपवर्तन से जुड़े प्रकाश के गुणधर्मों की जाँच करके इन्द्रधनुष से जुड़े कुछ सवालों के जवाब खोज निकाले। लेकिन अरस्तु का दर्शन के क्षेत्र में ऐसा रुतबा था कि फिर भी उनके इन्द्रधनुष बनने के विचार को कोई भी गलत नहीं कह पा रहा था।

सन् 1704 में न्यूटन ने अपने कुछ प्रयोगों, अवलोकनों और विश्लेषणों के बाद इन्द्रधनुष के बनने, रंगों वगैरह के बारे में विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की। पहले तो उन्होंने यह बताया कि सामान्य सफेद प्रकाश कई रंगों से मिलकर बना है। फिर उन्होंने काँच के प्रिज़्म की सहायता से सफेद प्रकाश के पुंज को सात रंगों में अलग करके दिखाया। अगले एक प्रयोग में उन्होंने पहले प्रिज़्म से सटाकर दूसरा प्रिज़्म रखा और सात अलग-अलग रंगों (अपवर्तित प्रकाश) को प्रिज़्म से गुज़ारकर, फिर से सफेद प्रकाश प्राप्त किया। इससे साबित हो गया कि काँच का प्रिज़्म किसी भी तरह रंगों का निर्माण नहीं कर रहा है। न्यूटन ने कुछ और प्रयोग करते हुए यह पता किया कि काँच के अलावा कुछ अन्य पदार्थ भी प्रकाश को अपवर्तित कर सकते हैं। इन पदार्थों में पानी भी शामिल था। इस तरह उनकी समझ में आया कि वायुमण्डल में मौजूद पानी की बूँदें प्रकाश को अपवर्तित और परावर्तित करती हैं, जो इन्द्रधनुष बनने का प्रमुख घटक है। न्यूटन ने सही निष्कर्ष निकाला था कि दरअसल आकाश में इन्द्रधनुष का बनना सूर्य की किरणों, बारिश की लाखों बूँदों और आपकी आँखों के बीच एक सफल संयोजन है।

माधव केलकर: *संदर्भ* पत्रिका से सम्बद्ध हैं।

संदर्भ में प्रकाशित इन्द्रधनुष से सम्बन्धित अन्य लेख-

1. बरसात, पानी की गोल बूँद और इन्द्रधनुष – अंक-16, मार्च-अप्रैल, 1997.
2. सावन का महीना, इन्द्रधनुष और कुछ विज्ञान – अंक-31, अप्रैल-मई, 2000.

पठन सन्दर्भ: *कॉन्सेप्चुअल फिज़िकल साइंस,* पॉल हेविट।

चित्र सन्दर्भ:

चित्र-1: विज्ञान, कक्षा-8, मप्र एससीईआरटी, वर्ष 2009.

चित्र-2: भौतिकी भाग-2, कक्षा-12, एनसीईआरटी, वर्ष 2021.

चित्र-3: *प्रकाश मॉड्यूल,* एकलव्य।

चित्र-4: http://www.disf.org/files/pic/raindrop.jpg

चित्र-5: https://upload.wikimedia.org/wikipedia/commons/thumb/b/bb/Descartes_Rainbow.png/960px-Descartes_Rainbow.png?_=20140625093859

चित्र 6 व 8: *कॉन्सेप्चुअल फिज़िकल साइंस,* पॉल हेविट।

सीनोरेब्डाइटिस एलेगेन्स
एक शानदार मॉडल जीव

किशोर पंवार व सुशील जोशी

जब वैज्ञानिकों को नोबेल पुरस्कार मिलता है, तो वे अमूमन अपने परिवार, सहकर्मियों, अपने विश्व-विद्यालय या शोध का वित्तपोषण करने वालों का शुक्रिया अदा करते हैं। लेकिन जब विक्टर एम्ब्रोस और गैरी रुवकुन को वर्ष 2024 के कार्यिकी या चिकित्सा विज्ञान के नोबेल सम्मान से नवाज़ा गया, तो रुवकुन ने चन्द मिनट अपने प्रयोग के जन्तु को दिए। वह जन्तु है, एक नन्हा-सा कृमि *सीनोरेब्डाइटिस एलेगेन्स* (*Caeno-rhabditis elegans*)। इस जन्तु को उन्होंने 'बैडएस' की संज्ञा दी, अमरीकी बोलचाल में जिसका मोटे तौर पर मतलब होगा, सख्त जान। यह मॉडल जीवों के इतिहास में एक मील का पत्थर था। वैसे इस जन्तु पर शोध कार्य के फलस्वरूप चार नोबेल पुरस्कार दिए जा चुके हैं। केवल रुवकुन ने ही नहीं, हर वैज्ञानिक ने अपने नोबेल व्याख्यान में इस नन्हे कृमि का शुक्रिया अदा किया है। जैसे 2002 में सिडनी ब्रेनर, जॉन सल्स्टन और रॉबर्ट होर्विट्ज़ को अंगों के विकास तथा पूर्व-निर्धारित कोशिका मृत्यु यानी एपेप्टोसिस सम्बन्धी खोजों के लिए नोबेल पुरस्कार दिया गया था। अपने नोबेल व्याख्यान में सिडनी ब्रेनर ने कहा था,

चित्र-1: *विक्टर एम्ब्रोस और गैरी रुवकुन*

सी. एलेगेन्स पर नोबेल पुरस्कार की बौछार

2002 अंगों के विकास और क्रमादेशित कोशिका मृत्यु सम्बन्धी खोज।

2006 आरएनए हस्तक्षेपण (RNAi) और जीन नियमन में इसकी भूमिका की खोज।

2008 मानव पैपिलोमा वायरस की पहचान तथा ग्रीवा कैंसर से उसके सम्बन्ध तथा एड्स के कारण के रूप में ह्यूमैन इम्यूनोडेफिशिएंसी वायरस (एचआईवी) की पहचान।

2024 सूक्ष्म आरएनए (microRNA) की खोज तथा ट्रांसक्रिप्शन उपरान्त जीन नियमन में उसकी भूमिका की प्रक्रिया का स्पष्टीकरण।

"इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस वर्ष के नोबेल पुरस्कार का चौथा विजेता *सीनोरेब्डाइटिस एलेगेन्स* है।"

वेब ऑफ साइन्स (Web of Science) डेटाबेस के अनुसार, 1980 से 2023 के बीच *सी. एलेगेन्स* से सम्बन्धित 24,496 पर्चे प्रकाशित हुए। इनमें से यदि समीक्षा पर्चों को हटा दिया जाए, तो भी यह संख्या 20,322 होती है।

कैसा है यह कृमि?

यह गोलकृमि मिट्टी में रहने वाला एक सरल जन्तु है जो सड़े-गले कार्बनिक पदार्थ युक्त ज़मीन में पाया जाता है। ऐसी मिट्टी में पाए जाने वाले बैक्टीरिया ही इसका भोजन हैं। यह एक पारदर्शी जीव है और यही इसकी एक खास विशेषता है जो इसे एक मॉडल जीव बनाती है। सन् 1900 में एमील मौपस ने इस प्रजाति को खोजा था और नाम *रेब्डाइटिस एलेगेन्स* रखा था। सन् 1955 में एल्सवर्थ डोगर्टी ने इसे जीनस अर्थात् वंश का दर्जा दिया और यह *सीनोरेब्डाइटिस एलेगेन्स (सी. एलेगेन्स)* हो गया।

मात्र एक मिमी लम्बाई वाले इस कृमि के दो लैंगिक रूप होते हैं - उभयलिंगी और नर। उभयलिंगी के शरीर में कुल जमा 959 कायिक कोशिकाएँ होती हैं जबकि नर में 1031 होती हैं। इसका जीवन-चक्र मात्र तीन दिन का है - यानी तीन दिन बाद एक नया कृमि पैदा हो जाता है। यह एक पारदर्शी जीव है और इसके शरीर में न तो हृदय होता है, न रक्त परिसंचरण तंत्र, और न ही श्वसन तंत्र। शरीर कुल मिलाकर एक मुँह, ग्रसनी (pharynx), और जननांगों से मिलकर बना होता है। ऊपर से पारदर्शी क्यूटिकल का आवरण होता है। इसे प्रयोगशाला में पनपा पाना या पालना आसान है। यही सरलता इसे जीव विज्ञान का एक बहुमूल्य मॉडल बनाती है।

हालाँकि, कृमि और मनुष्य कई प्रकार से अलग हैं फिर भी दोनों प्रजातियों के जीन्स और आणविक

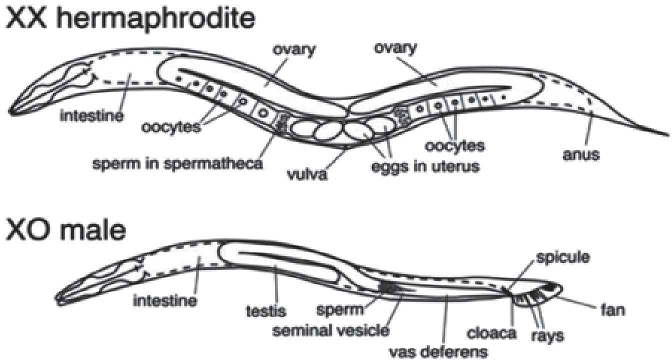

***चित्र-2:** सी. एलेगेन्स के दो लैंगिक रूपों के बीच शारीरिक (एनाटॉमिकल) अन्तर को दर्शाता चित्र: XX उभयलिंगी (हर्माफ्रोडाइट) और XO नर।*

मार्गों में काफी समानताएँ हैं। यदि आप यह पता लगा लें कि कोई कोशिकीय क्रियाविधि कृमि के विकास के दौरान कैसे काम करती है तो 95 प्रतिशत मामलों में यह इन्सानों में भी बिलकुल उसी तरह काम करेगी। इसका मतलब है कि कृमि पर किए गए वैज्ञानिक अध्ययन से प्राप्त जानकारी, मनुष्यों में बीमारियों और विकास के बारे में समझ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

चूँकि यह कृमि पारदर्शी है, इसलिए इसके नाभिकीय प्रवास को सूक्ष्मदर्शी की मदद से जीवित जीव में देखा जा सकता है। भ्रूणावस्था में इसकी कोशिकाओं के तेज़ विकास तथा एक-एक कोशिका के अलग-अलग आसान अवलोकन की बदौलत, प्रत्येक कोशिका की नियति का मार्ग देखा जा सकता है - इसे 'कोशिका नियति मानचित्र' (cell fate map) कहा जाता है।

सी. एलेगेन्स का सर्वप्रथम अध्ययन तो विक्टर नाइगॉन और एल्सवर्थ डोगर्टी की प्रयोगशाला में 1940 के दशक में किया गया था लेकिन इसे एक मॉडल जन्तु का दर्जा दिलवाने का काम 1963 में सिडनी ब्रेनर ने किया था, जब उन्होंने इसे परिवर्धन (development) के जीव विज्ञान और जेनेटिक्स के अध्ययन हेतु एक मॉडल के रूप में प्रस्तावित किया। सन् 1974 में ब्रेनर ने जेनेटिक छँटनी के प्रारम्भिक परिणाम प्रकाशित किए थे। उन्होंने शरीर रचना व कामकाज की दृष्टि से अलग-अलग सैकड़ों उत्परिवर्तित जन्तुओं को पृथक किया था। 1980 के दशक में जॉन सल्स्टन तथा उनके सहकर्मियों ने वयस्क उभयलिंगी की समस्त 959 कायिक कोशिकाओं की कोशिका वंशावली

का पूर्ण मानचित्रण किया। इसका अर्थ यह है कि इनमें से प्रत्येक कोशिका का, निषेचित अण्डे से लेकर वयस्क तक का, सम्पूर्ण विकासात्मक इतिहास पता लगाया गया। इसी के साथ पहले जीन्स का क्लोनिंग किया गया और अन्ततः सन् 1998 में यह पहला बहुकोशिकीय जीव बना जिसके पूरे जीनोम का अनुक्रमण कर लिया गया था।

शुरुआती अनुसंधान

सी. एलेगेन्स का प्रथम विवरण सन् 1900 में एमील मौपस द्वारा दिया गया था। उन्होंने इसे अल्जीरिया में मिट्‌टी में से हासिल किया था। बहरहाल, शुरुआती शोध कार्य तो इस बात पर केन्द्रित रहा था कि इस कृमि का शुद्ध कल्चर तैयार कर लिया जाए, यानी जिसमें किसी अन्य प्रजाति की मिलावट न हो। इस कृमि को कोशिकीय विकास के एक मॉडल के रूप में सर्वप्रथम सिडनी ब्रेनर ने प्रस्तावित किया था।

जीन हस्तान्तरण (ट्रांसजेनेसिस)

ट्रांसजेनेसिस एक जीव के जीनोम में विदेशी आनुवंशिक सामग्री (एक ट्रांसजीन) को शामिल करने की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप एक ट्रांसजेनिक जीव उत्पन्न होता है जो नए जीन को अभिव्यक्त करता है तथा एक संशोधित गुण या विशेषता प्रदर्शित करता है। यह किसी जीन की भूमिका को समझने का एक अच्छा तरीका हो सकता है।

सी. एलेगेन्स इस प्रक्रिया के लिए सर्वथा अनुकूल है। ट्रांसजेनिक कृमि तैयार करने का सबसे आम तरीका तो यह है कि बाहरी डीएनए को कृमि की एक सिंसिशियल जर्म लाइन में इंजेक्ट कर दिया जाए। सिंसिशियल जर्म लाइन वह होती है जिसमें जर्म कोशिकाएँ (कोशिकाएँ जो युग्मकों में विकसित हो सकती हैं) एक ही कोशिका द्रव्य साझा करती हैं, जिससे एक बहुकेन्द्रकीय कोशिका बनती है। यह व्यवस्था विशेष रूप से युग्मक निर्माण की प्रक्रिया के दौरान देखी जाती है। दूसरा तरीका बायोलिस्टिक

चित्र-3: *एमील मौपस*

ट्रांसफॉर्मेशन (यानी मनचाहे डीएनए को सीधे लक्षित कोशिका में पहुँचाने) का है।

सी. एलेगेन्स में इस प्रक्रिया का उपयोग करके कई महत्वपूर्ण समझ हासिल हुई हैं।

कोशिका व जन्तु की मृत्यु

कोशिकाओं की मृत्यु बहुकोशिकीय जन्तु विकास का एक अहम व सामान्य हिस्सा है। ऊतकों को तराशना, अंगों की संरचना का निर्माण, अंगों के आकार (साइज़) का नियंत्रण वगैरह स्वाभाविक कोशिका मृत्यु (एपोप्टोसिस) से तय होते हैं। जब स्वाभाविक कोशिका मृत्यु की प्रक्रिया गड़बड़ हो जाए, तो कई चीज़ें गड़बड़ा जाती हैं। मनुष्यों में कई बीमारियों में कोशिका मृत्यु सम्बन्धी गड़बड़ियाँ शामिल होती हैं। इस दृष्टि से कोशिका मृत्यु (पूर्व निर्धारित व असमय) को समझना अनुसंधान का एक महत्वपूर्ण विषय है।

सी. एलेगेन्स उन कोशिकीय व आणविक प्रक्रियाओं का खुलासा करने में प्रमुख रहा है जो क्रमादेशित कोशिका मृत्यु का नियंत्रण करती हैं। हालाँकि, यह परिकल्पना तो बहुत पहले प्रस्तुत हो चुकी थी कि एपोप्टोसिस एक सुनियंत्रित प्रक्रिया है लेकिन कोशिका मृत्यु को नियंत्रित करने वाले कारकों का अध्ययन सर्वप्रथम *सी. एलेगेन्स* में ही किया गया था (2003)।

इसमें सबसे महत्वपूर्ण अवलोकन यह था कि एक ही उम्र के कृमियों में कोशिकाओं की संख्या और स्थान लगभग एक जैसे रहते हैं। अर्थात् इस जन्तु में कोशिकाओं के वंश लगभग अपरिवर्तित रहते हैं। इस प्रस्ताव में महत्वपूर्ण भूमिका इस बात की थी कि *सी. एलेगेन्स* की त्वचा का आवरण पारदर्शी होने की वजह से, इसमें कोशिका विभाजन की प्रक्रिया का अध्ययन आसान है। इन प्रयासों की मदद से यह स्पष्ट हुआ कि *सी. एलेगेन्स* का उभयलिंगी व नर वयस्क तैयार होने के लिए सटीकता से 1090 और 1178 कायिक कोशिकाएँ बन जाना ज़रूरी है। *सी. एलेगेन्स* के व्यवस्थित अध्ययन से एपोप्टोसिस, मृत कोशिका के मलबे को हटाने वगैरह की जटिल क्रियाविधि स्पष्ट हो पाई है। लेकिन हमने ऊपर देखा था कि वयस्क उभयलिंगी में मात्र 959 कोशिकाएँ होती हैं। यहीं से एपोप्टोसिस का भान हुआ – एपोप्टोसिस के कारण 131 कोशिकाएँ मृत हो जाती हैं, और बची रहती हैं 959 (1090-131)। यह भी पता चला है कि नर में एपोप्टोसिस में 147 कोशिकाएँ मारी जाती हैं (इस तरह से नर में रहती हैं, 1178-147=1031)। इस प्रक्रिया के विभिन्न लक्षण *सी. एलेगेन्स* में पहचाने गए और इनमें से कई लक्षण स्तनधारी कोशिकाओं में बने रहे हैं।

लेकिन कोशिका मृत्यु से अलग

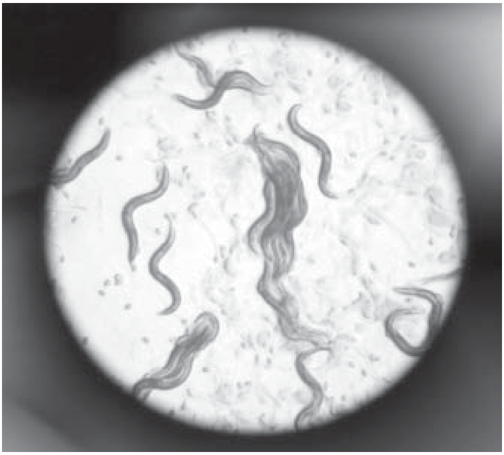

चित्र-4: इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप में सी. एलेगेन्स

तंत्रगत ध्वंस वह प्रक्रिया है जो जन्तु की मृत्यु का कारण बनती है। इस तरह की मृत्यु के कारक भी पहचाने गए हैं और यह भी देखा जा चुका है कि इन कारकों को बाधित करने से क्षय-जन्य मृत्यु को टाला जा सकता है।

प्रत्येक कोशिका के सटीक विकास मार्ग (कोशिका वंशावली) की जानकारी में से जो सबसे महत्वपूर्ण समझ हासिल हुई, उसका सम्बन्ध एपोप्टोसिस से है। कोशिकाओं की मृत्यु का अवलोकन तो कई जीवों में किया जा चुका था लेकिन *सी. एलेगेन्स* की कोशिका वंशावली ने दर्शाया कि एपोप्टोसिस विशिष्ट कोशिकाओं में, विशिष्ट समय पर होता है और यह एक विशिष्ट जैव-रासायनिक प्रक्रिया से सम्पन्न होता है जो सख्त जेनेटिक नियंत्रण में होती है। और तो और, यह भी स्पष्ट हुआ कि एपोप्टोसिस के लिए ज़िम्मेदार जीन्स जैव-विकास के दौरान जन्तुओं में संरक्षित रहे हैं। और एपोप्टोसिस क्रियापथ में गड़बड़ी इन्सानों में कई रोगों का कारण बनती है - जैसे, कैंसर, आत्म-प्रतिरक्षा रोग और तंत्रिका-विघटन से सम्बन्धित रोग। एपोप्टोसिस क्रिया पथ को कई बार कीमोथेरपी या रेडिएशन के द्वारा सक्रिय किया जाता है। कोशिका वंशावली एवं एपोप्टोसिस और *सी. एलेगेन्स* को जेनेटिक विश्लेषण के लिए एक मॉडल जीव के रूप में विकसित करने के शोध कार्य के लिए सिडनी ब्रेनर, जॉन सस्टन और एच. रॉबर्ट होविट्ज़ को 2002 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।

कोशिकाओं में संकेतों का आदान-प्रदान (signaling pathways)

सिग्नल ट्रांसडक्शन वह प्रक्रिया है जिसके ज़रिए कोई भी कोशिका बाह्य संकेत प्राप्त करती है, उसे प्रोसेस करती है और उस पर प्रतिक्रिया देती है। जन्तुओं में लगभग सारे सिग्नल ट्रांसडक्शन मार्गों की खोज *सी. एलेगेन्स* (भ्रूण या उससे आगे की

अवस्थाओं) के विभिन्न उत्परिवर्तियों पर अध्ययन के ज़रिए हुई है। मनुष्यों में अधिकांश कैंसर में पाया गया है कि किसी-न-किसी सिग्नल ट्रांसडक्शन क्रियापथ में गड़बड़ी होती है। लिहाज़ा, इनकी समझ ने कैंसर जीव विज्ञान में भी काफी योगदान दिया है। ज़्यादा हाल में, *सी. एलेगेन्स* में तंत्रिका संकेतों तथा इन्सुलिन संकेतन के मार्गों का भी खुलासा हुआ है, जिसके चलते यह इस तरह के अध्ययनों के लिए आकर्षक मॉडल बन गया है।

बुढ़ाना (Ageing)

अण्डा देने के बाद प्रयोगशाला की परिस्थितियों में कृमि का जीवन काल करीब 14 से 21 दिन का होता है। ऐसे उत्परिवर्तित जन्तु खोजे गए हैं जिनका जीवन काल 50 से 100 प्रतिशत अधिक होता है। साथ ही, कृमियों में जीवन काल को बढ़ाने के लिए ज़िम्मेदार कई जीन्स भी पहचाने गए हैं। इनमें से अधिकांश जीन्स विभिन्न जन्तुओं में संरक्षित रहे हैं और कुछ जन्तुओं के बढ़े हुए जीवन काल से सम्बन्धित भी हैं। मनुष्यों में बुढ़ाना एक जटिल प्रक्रिया है जिसमें लगभग सारे अंग-तंत्र प्रभावित होते हैं। इसलिए शुरू-शुरू में यह एक आश्चर्यजनक खोज थी कि विविध जन्तुओं में बुढ़ाने की जैविक प्रक्रिया काफी एकसमान है जबकि उनके जीवन काल में काफी अन्तर होते हैं।

सी. एलेगेन्स बुढ़ाने की प्रक्रिया को

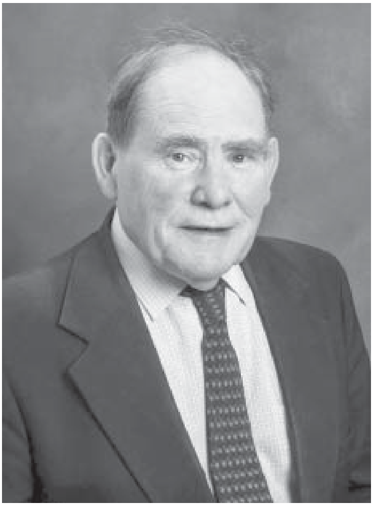

चित्र-5: *सिडनी ब्रेनर*

समझने में एक महत्वपूर्ण मॉडल जीव रहा है। उदाहरण के लिए, देखा गया है कि यदि इन्सुलिन-नुमा वृद्धि कारक (insulin-like growth factor - IGF) को बाधित कर दिया जाए तो वयस्क की जीवन अवधि तीन गुना तक बढ़ जाती है। दूसरी ओर, यदि ग्लूकोज़ खिलाया जाए तो उम्र आधी रह जाती है (जो ऑक्सीकारक तनाव की वजह से होता है)। इसी प्रकार से, यदि अधेड़ावस्था (कृमि की अधेड़ावस्था) में इन्सुलिन/IGF का विघटन करवा दिया जाए तो जीवन में काफी वृद्धि हो जाती है। यह भी देखा गया है कि कृमि के लम्बी उम्र वाले उत्परिवर्तित संस्करण ऑक्सीकारक तनाव और पराबैंगनी प्रकाश का प्रतिरोध दर्शाते हैं। ऐसे उत्परिवर्तियों में डीएनए की

मरम्मत करने की क्षमता भी ज़्यादा थी। अर्थात् डीएनए मरम्मत की क्षमता का सम्बन्ध लम्बी उम्र से है। डीएनए क्षति की मरम्मत करने की क्षमता उम्र के साथ कम होती जाती है।

एक मान्यता यह रही है कि डीएनए की ऑक्सीकारक क्षति बुढ़ाने की वजह होती है। *सी. एलेगेन्स* के अध्ययन से पता चला है कि सुपरऑक्साइड डिस्म्यूटेज़ (superoxide dismutase) दिया जाए तो वह क्रियाशील ऑक्सीजन मूलकों को कम करता है और बुढ़ाने की प्रक्रिया को धीमा करता है।

यह देखा गया कि *सी. एलेगेन्स* को लीथियम क्लोराइड का उपचार देने पर भी, उसकी जीवन अवधि बढ़ती है।

सी. एलेगेन्स के अध्ययन का एक विषय टीलोमेयर (telomere) पर केन्द्रित रहा है। टीलोमेयर गुणसूत्रों के सिरों पर डीएनए की दोहराई जानी वाली शृंखला होती है। यह गुणसूत्र को क्षति से बचाती है और हर कोशिका विभाजन के बाद छोटी होती जाती है। इसकी लम्बाई एक हद से कम हो जाने के बाद वह कोशिका आगे विभाजन नहीं कर पाती और झड़ जाती है।

लेकिन *सी. एलेगेन्स* के अध्ययन में एक विचित्र बात पता चली। *ड्रॉसोफिला मेलानोगैस्टर* जैसे कई जन्तुओं में टीलोमेयर की लम्बाई को बनाए रखने की विधि में रिट्रोट्रांसपोज़ॉन्स की भूमिका देखी गई है। रिट्रोट्रांसपोज़ॉन्स डीएनए के ऐसे खण्ड होते हैं जो एक जगह से दूसरी जगह फुदकते रहते हैं। लेकिन *सी. एलेगेन्स* में टीलोमेयर की सुरक्षा के लिए सामान्य तरीके के अलावा एक अलग तरीके का उपयोग देखा गया है, जिसे वैकल्पिक टीलोमेयर लेंथनिंग (ALT) कहते हैं। *सी. एलेगेन्स* वह पहला यूकेरियोट जीव था जिसने सामान्य टीलोमेयर प्रक्रिया को ठप किए जाने के बाद ALT हासिल कर ली। इसी तरह ALT कई कैंसर में देखी गई है जो कई परिस्थितियों में अपना टीलोमेयर लम्बा करती रहती है। ऐसे कैंसर ज़्यादा घातक साबित होते हैं। लिहाज़ा, *सी. एलेगेन्स* ALT अध्ययन के लिए एक अहम मॉडल है।

नींद

सी. एलेगेन्स सम्भवत: सबसे सरल (आदिम) जन्तु है जिसमें नींद जैसी अवस्था देखी गई है। यह जन्तु हर निर्मोचन से पहले एक सुस्त हालत में जाता है। यह भी दर्शाया गया है कि *सी. एलेगेन्स* शारीरिक तनाव, गर्मी के आघात, पराबैंगनी विकिरण और बैक्टीरिया-जनित टॉक्सिन से सम्पर्क के बाद भी नींद में चला जाता है।

संवेदनाएँ

इस कृमि के पास आँखें तो नहीं होतीं लेकिन यह प्रकाश के प्रति संवेदनशील होता है। इसका कारण

एक प्रकाश संवेदी प्रोटीन (LITE-1) की उपस्थिति है और यह प्रकाश संवेदी प्रोटीन जन्तुओं में पाए जाने वाले अन्य प्रकाश-संवेदी रंजकों (ऑप्सिन तथा क्रिप्टोक्रोम) की तुलना में 10-100 गुना अधिक कुशलता से प्रकाश अवशोषित करता है।

सी. एलेगेन्स त्वरण को सहन करने में भी असाधारण है - यह 4,00,000 गुरुत्व के सेंट्रीफ्यूज (40,000 घूर्णन प्रति मिनट) में रखकर घुमाने पर भी अप्रभावित रहता है।

सी. एलेगेन्स के बारे में एक दिलचस्प बात यह है कि भ्रूणावस्था के उपरान्त कोशिकाओं का प्रवास बहुत कम होता है और जो प्रवास होता है, वह पूर्वानुमान के योग्य होता है। परिणाम यह होता है कि विभिन्न अलग-अलग कृमियों में कोई विशिष्ट कोशिका उसी स्थान पर पाई जाएगी और उन्हीं कोशिकाओं के साथ सीधे सम्पर्क में रहेगी।

यह तंत्रिका तंत्र का एक महत्वपूर्ण लक्षण है। किसी वयस्क उभयलिंगी कृमि में 302 तंत्रिका कोशिकाएँ होती हैं और साथ में 56 ग्लियल कोशिकाएँ। विभिन्न तकनीकों की मदद से *सी. एलेगेन्स* के पूरे तंत्रिका तंत्र का मानचित्रण किया जा चुका है। देखा गया है कि शरीर की भित्ती में मोटर (यानी काम को अंजाम देने वाली) तंत्रिकाएँ होती हैं। मुँह पर रसायन-संवेदी तंत्रिकाएँ पाई जाती हैं। स्पर्श, प्रकाश, तापमान, नमक तथा अन्य संवेदनाओं के लिए अलग-अलग तंत्रिकाएँ होती हैं। समस्त संवेदी तंत्रिकाओं का जुड़ाव मोटर तंत्रिकाओं से होता है।

कुल मिलाकर, सोचा गया था कि यह कृमि एक चलती-फिरती नलिका भर है जो मात्र बुनियादी क्रियाओं को पूरा करती है - भोजन-ग्रहण, अण्डे देना और चलना-फिरना। लेकिन आगे अनुसंधान ने कृमि के व्यवहार के कई आयाम उजागर किए। इस सन्दर्भ में नोबेल विजेता मार्टिन चाफी का काम उल्लेखनीय है। कुछ जन्तु एक ग्रीन फ्लोरेसेंट प्रोटीन (GFP) का निर्माण करते हैं जो एक हरी रोशनी उत्सर्जित करता है। इसके निर्माण के लिए ज़िम्मेदार जीन को अन्य जीवों के जीनोम में जोड़ा जा सकता है। अब GFP जैविक प्रक्रियाओं के अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण औज़ार बन गया है। मार्टिन चाफी ने *सी. एलेगेन्स* के जीनोम में इस जीन को जोड़ दिया और इस तरह से वे 6 अलग-अलग कोशिकाओं को रंगीन बनाने में सफल रहे। रंगीन हो जाने के कारण इन कोशिकाओं का निरन्तर अध्ययन किया जा सकता था। इसकी मदद से वे तंत्रिका कोशिकाओं के विकास का अध्ययन कर पाए थे। इसके अलावा, उनके अनुसंधान ने GFP के सामान्य उपयोग का मार्ग प्रशस्त किया। आजकल *सी. एलेगेन्स* के तंत्रिका तंत्र को मानव तंत्रिका रोगों तथा अन्य विकारों के

मॉडल के रूप में उपयोग किया जाने लगा है। इसी के साथ *सी. एलेगेन्स* की ग्लियल कोशिकाओं के कार्य और कार्यिकी का भी अध्ययन इस दृष्टि से किया जा रहा है तथा तंत्रिकाओं और अन्य कोशिकाओं के बीच सम्बन्धों की भी पड़ताल जारी है।

सूक्ष्म आरएनए तथा हस्तक्षेपी आरएनए (microRNA और RNAi)

सी. एलेगेन्स के जीवन-चक्र में चार एकदम अलग-अलग लार्वा अवस्थाएँ होती हैं। हर लार्वा अवस्था तथा वयस्क में बनने वाली क्यूटिकल की संरचना अलग-अलग होती है जिसके आधार पर इन्हें पहचाना जा सकता है। कई अलग-अलग ऐसे उत्परिवर्तित कृमि तैयार किए गए हैं जो विकास की इन अवस्थाओं के लिहाज़ से थोड़े अलग-अलग होते हैं। जैसे किसी में कोई विकास अवस्था छोड़कर आगे बढ़ जाते हैं तो किसी में एक ही अवस्था बार-बार दोहराई जाती है। इनके अध्ययन से कुछ महत्वपूर्ण परिणाम प्राप्त हुए हैं।

उदाहरण के लिए, lin-4 नामक जीन में उत्परिवर्तन वाले कृमियों में प्रथम लार्वा अवस्था दोहराई गई जिससे पता चला कि lin-4 द्वारा बनाया गया प्रोटीन प्रथम लार्वा अवस्था से निकलकर द्वितीय लार्वा अवस्था में प्रवेश के लिए ज़रूरी है। दूसरी ओर, lin-14 जीन में उत्परिवर्तन का असर उल्टा हुआ - ऐसे कृमियों में प्रथम लार्वा अवस्था आई ही नहीं, सीधे द्वितीय लार्वा अवस्था आ गई। इससे तो लगता है कि प्रथम लार्वा अवस्था होने के लिए lin-14 द्वारा बनाया जाने वाला प्रोटीन ज़रूरी है।

जब इन दोनों जीन्स को क्लोन किया गया तो पता चला कि lin-4 जीन किसी प्रोटीन का कोड करने लायक ही नहीं था। दूसरी ओर, lin-14 प्रोटीन का कोड था। दरअसल, lin-4 जीन एक सूक्ष्म आरएनए का कोड पाया गया - शुरू में यह सूक्ष्म आरएनए 70 न्यूक्लियोटाइड लम्बा था और अन्त में 22 न्यूक्लियोटाइड का रह गया। विश्लेषण से पता चला कि lin-4 द्वारा बनाए गए आरएनए में lin-14 द्वारा बनाए गए मेसेंजर आरएनए के उन हिस्सों के पूरक थे जो अनूदित नहीं किए जाते (यानी ये किसी प्रोटीन का निर्माण नहीं करते)। इस खोज से यह समझ उभरी कि शायद lin-4 एक माइक्रो-आरएनए बनाता है जो lin-14 के प्रतिलेखन को रोक देता है। lin-4 वह पहला जीन था जिसे एक माइक्रो-आरएनए बनाते देखा गया था। आगे चलकर इसी तरह के अन्य माइक्रो-आरएनए पहचाने गए जो किसी जीन के काम को ठप कर देते हैं। मनुष्य के जीनोम में लगभग 1800 ऐसे माइक्रो-आरएनए जीन्स पहचाने जा चुके हैं।

माइक्रो-आरएनए की खोज के साथ आरएनए-हस्तक्षेप (RNAi) को *सी. एलेगेन्स* में जीन अभिव्यक्ति को

रोकने के लिए उपयोग किया गया। वैसे तो RNAi द्वारा जीन की अभिव्यक्ति को रोकने की प्रक्रिया पेटुनिया में देखी गई थी लेकिन इसकी क्रियाविधि को समझकर इसका उपयोग करने की बात *सी. एलेगेन्स* में ही हुई। एण्ड्रयू फायर और क्रैग मेलो ने देखा कि *सी. एलेगेन्स* में डबल-स्ट्रैंडेड आरएनए (डीएस-आरएनए) को इंजेक्ट करने से सम्बन्धित मैसेंजर आरएनए (एमआरएनए) को नष्ट करके विशिष्ट जीन को शान्त किया जा सकता है, जिससे प्रोटीन उत्पादन का दमन हो सकता है। सन् 1998 में की गई इस खोज ने जीन नियमन की हमारी समझ में क्रान्तिकारी बदलाव ला दिया और इसके लिए उन्हें 2006 में नोबेल से नवाज़ा गया था।

बीमारियों की तहकीकात

शुरुआत में तो माना गया था कि मानव रोगों के अनुसंधान में इस कृमि की भूमिका सीमित ही है। लेकिन जब यह स्पष्ट हो गया कि मानव जीन्स और जीन्स के विविध संस्करणों को *सी. एलेगेन्स* के जीनोम में जोड़कर अभिव्यक्त करवाया जा सकता है तो नए आयाम खुल गए। उदाहरण के लिए kindlin-1 जीन को देखते हैं। *सी. एलेगेन्स* में इसके समजातीय जीन से जो प्रोटीन बनता है, वह इंटेग्रिन से अन्तर्क्रिया करता है। इस खोज के बाद मनुष्यों में इसी प्रकार की रोग प्रक्रिया की खोज की गई। इंटेग्रिन कोशिका संवाद में अहम भूमिका निभाते हैं और इनमें गड़बड़ी कई रोगों का कारण बन सकती है।

इसी प्रकार से मनुष्यों में एक जीन होता है presenilin-1 जिसे अल्ज़ाइमर रोग से जुड़ा माना जाता है। जब इसे *सी. एलेगेन्स* में अभिव्यक्त करवाया गया तो पता चला कि इसकी वजह से तापमान संवेदी गति (thermotaxis) में बाधा आई।

हाल ही में शोधकर्ता ऑटिज़्म स्पेक्ट्रम दिक्कत को समझने के लिए *सी. एलेगेन्स* में समजातीय जीन्स पहचानने का प्रयास कर रहे हैं। *सी. एलेगेन्स* के तंत्रिका तंत्र को भलीभाँति समझा जा चुका है। इसके अलावा, इस कृमि में ऑटिज़्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर से जुड़े कई समजातीय जीन्स भी हैं। हालाँकि, कृमि में ऑटिज़्म सम्पूर्ण रूप में तो प्रकट नहीं होता लेकिन कई खोजबीन इसकी मदद से सम्भव हैं। एक तो किसी जेनेटिक उत्परिवर्तन का असर इसकी तंत्रिकाओं के कामकाज और कृमि के व्यवहार पर देखा जा सकता है। इस तरह के अध्ययनों से ऑटिज़्म के मूल में उपस्थित क्रियाविधियों को समझने में मदद मिलती है।

उदाहरण के लिए, शोधकर्ताओं ने सायनेप्स (तंत्रिकाओं के बीच जुड़ाव) निर्माण व कामकाज के लिए ज़रूरी जीन्स का अध्ययन करके यह समझने की कोशिश की है कि उनका

ऑटिज़्म से सम्बन्धित व्यवहार की असामान्यताओं से क्या सम्बन्ध है। वैसे तो *सी. एलेगेन्स* एक सरल जीव है लेकिन यह सामाजिक व्यवहार का प्रदर्शन करता है - जैसे भोजन के कारण झुण्ड बनाना। शोधकर्ता जेनेटिक उत्परिवर्तन और कृमि के इस व्यवहार में परिवर्तन के सम्बन्ध का अध्ययन करते हैं। चूँकि इस कृमि में ट्रांसजेनेसिस आसान है, इसलिए इस तरह के कई अध्ययन किए जा रहे हैं।

औषधि अनुसंधान

छोटा जीनोम और छोटे जीवन-चक्र की वजह से यह बहुकोशिकीय जीव, जन्तुओं में औषधियों और विषों की तेज़ी-से छँटनी करने का उम्दा मॉडल है। *सी. एलेगेन्स* में मानव रोगों के समजातीय जीन देखे जाते हैं। इसलिए यह वर्तमान में स्वीकृत दवाइयों के नए उपयोग खोजने में मदद कर सकता है।

अन्तरिक्ष में उड़ान

सी. एलेगेन्स तब सुर्खियों में आया था जब यह सन् 2003 में कोलंबिया स्पेस शटल हादसे के बाद भी जीवित मिला था। बाद में, 2009 में घोषणा हुई थी कि *सी. एलेगेन्स* अन्तर्राष्ट्रीय स्पेस स्टेशन पर दो सप्ताह बिता रहा था। इसे वहाँ इसलिए भेजा गया था ताकि शून्य गुरुत्वाकर्षण का असर मांसपेशियों के विकास और अन्य शरीर क्रियाओं पर परखा जा सके। इस अनुसंधान का सम्बन्ध प्रमुख रूप से अन्तरिक्ष उड़ान, बिस्तर पर पड़े रहने और बुढ़ापे और मधुमेह के कारण मांसपेशीय विकारों को समझना था। कोलंबिया शटल के मुसाफिर कृमियों के वंशजों को बाद में एंडेवर यान में भेजा गया था। ऐसे कई अन्तरिक्ष प्रयोगों का निष्कर्ष था कि मांसपेशियों और हड्डियों के जुड़ावों को प्रभावित करने वाले जीन्स अन्तरिक्ष में कम अभिव्यक्त होते हैं। अलबत्ता, यह पता नहीं चल पाया है कि इसका मांसपेशियों की ताकत पर क्या असर होता है।

जेनेटिक्स

सी. एलेगेन्स के जीनोम में लगभग 20,470 ऐसे जीन्स होते हैं जो किसी-न-किसी प्रोटीन का कोड हैं। इनमें से 35 प्रतिशत जीन्स के मानव होमोलॉग्स (समजातीय) हैं। समजातीय जीन, या होमोलॉग्स, विभिन्न प्रजातियों में पाए जाने वाले ऐसे जीन होते हैं जो एक सामान्य पूर्वज जीन से विकसित होते हैं। उनके डीएनए अनुक्रम में काफी हद तक समानता होती है और अक्सर उनके कार्य भी सम्बन्धित होते हैं। और यह कई बार दर्शाया जा चुका है कि यदि मानव जीन्स को *सी. एलेगेन्स* में प्रविष्ट कराया जाए तो वे अपने समजातीय जीन्स का स्थान ले लेते हैं। इसके विपरीत *सी. एलेगेन्स* के कई जीन्स

स्तनधारी जीन्स के समान कार्य कर सकते हैं।

उपरोक्त चर्चा से स्पष्ट है कि गोल कृमि *सी. एलेगेन्स* ने जीव विज्ञान की कई गुत्थियों को सुलझाने में मदद की है और पिक्चर अभी बाकी है। लेकिन एक बात पर कुछ कहना मुनासिब है। वह है, *सी. एलेगेन्स* को तमाम जीव वैज्ञानिक प्रक्रियाओं के लिए एक मॉडल बनाने का प्रयास।

सिडनी ब्रेनर से शुरू करके *सी. एलेगेन्स* पर काम करने वाले शोधकर्ताओं का एक समुदाय विकसित होता गया, जो स्वयं को कृमि-जन (worm-people) कहता है। इस समुदाय की एक विशेषता, इसका सहयोगी रवैया और खुलापन रहा है। अपनी खोज को एक-दूसरे से साझा करना, नए शोधकर्ताओं को हर तरह से मदद करना (चाहे सामग्री उपलब्ध करवाकर या कामकाज में मदद देकर), समय-समय पर मिलकर विचार-विमर्श करना – इस समुदाय के व्यवहार में शुमार रहा है।

सन् 1975 से ही यह समूह एक छमाही *वर्म ब्रीडर्स* गज़ट प्रकाशित करता आ रहा है। *सी. एलेगेन्स* शोध समुदाय हर दो साल में अन्तर्राष्ट्रीय कृमि सम्मेलन आयोजित करता है जहाँ शोध पत्रों वगैरह के अलावा कृमि सम्बन्धी प्रहसन, नृत्य वगैरह प्रस्तुत किए जाते हैं।

एक वर्मबुक प्रकाशित की जाती है जिसमें वर्तमान शोध के विवरण, शोध सम्बन्धी सामग्री की उपलब्धता तथा प्रोटोकॉल वगैरह शामिल होते हैं। अर्थात् यह गोलकृमि अनुसंधान की जो सम्भावनाएँ प्रस्तुत करता है, उनको साकार रूप देने में एक कृमि समुदाय की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

किशोर पंवार: शासकीय होल्कर विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर में बीज तकनीकी विभाग के विभागाध्यक्ष और वनस्पतिशास्त्र के प्राध्यापक रहने के बाद सेवानिवृत्त। 'होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम' से लम्बा जुड़ाव रहा है जिसके तहत *बाल वैज्ञानिक* के अध्यायों का लेखन और प्रशिक्षण देने का कार्य किया। *एकलव्य* द्वारा जीवों के क्रियाकलापों पर आपकी तीन किताबें प्रकाशित। शौकिया फोटोग्राफर, लोक भाषा में विज्ञान लेखन व विज्ञान शिक्षण में रुचि।

सुशील जोशी: *एकलव्य* द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

लेख में उल्लिखित वैज्ञानिकों के नाम यहाँ अँग्रेज़ी में दिए गए हैं, ताकि आप उनके बारे में अन्य जानकारी आसानी-से खोज सकें।

Victor Ambros, Gary Ruvkun, Victor Nigon, Sydney Brenner, John E. Sulston, H. Robert Horvitz, Émile Maupas, Ellsworth Dougherty, Andrew Fire, Craig Mello.

डार्क एनर्जी, ब्लैक होल और सुपर रेडिएंट बम

विनय आर.आर.

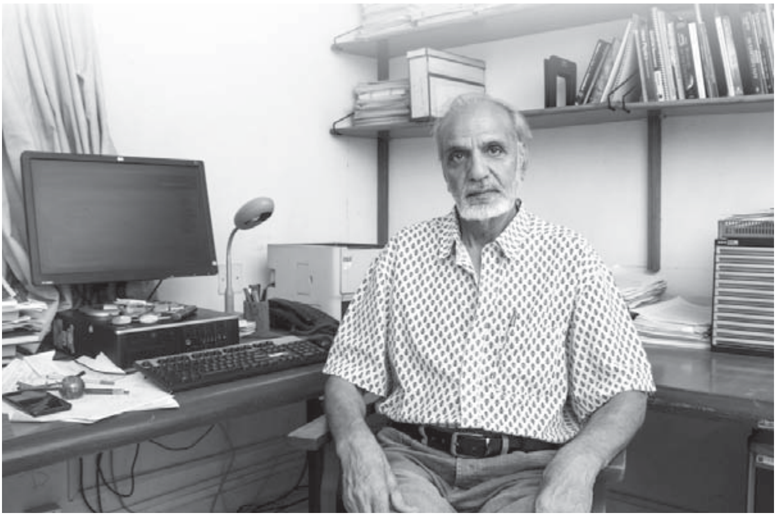

चित्र-1: डॉ. नरेश दधिच

डॉ. नरेश दधिच भारत के मशहूर सैद्धान्तिक भौतिक विज्ञानी थे। उनका शोध मुख्य रूप से सामान्य सापेक्षितावाद, गुरुत्वाकर्षण, ब्लैक होल एवं ब्रह्माण्ड विज्ञान (कॉस्मोलॉजी) पर केन्द्रित था। डॉ. दधिच खगोल भौतिकी और क्वांटम गुरुत्व के क्षेत्र में भारत के अग्रणी वैज्ञानिक एवं शोधकर्ता रहे हैं। उनका काम भारत में विज्ञान के क्षेत्र में काम करने वाले सभी लोगों के लिए प्रेरणादायक रहेगा। इस लेख में हम यह जानने की कोशिश करेंगे कि डॉ. दधिच ने क्या काम किया या यूँ कहें कि उनका शोध यकीनी तौर पर क्या बताता है।

ब्रह्माण्ड तेज़ी-से फैल रहा है

आम तौर पर किताबों में आपने कई बार पढ़ा होगा कि वैज्ञानिकों के बकौल, हमारा ब्रह्माण्ड तेज़ी-से फैल रहा है। लेकिन कई दफा हमें समझ नहीं आता कि दरअसल इस वाक्य का मतलब है क्या।

डॉ. दधिच ने इस बात को सरल तरीके से समझाने की कोशिश की है। हम सभी पृथ्वी ग्रह पर रहते हैं। पृथ्वी और अन्य ग्रह-उपग्रह मिलकर हमारा सौर-मण्डल बनाते हैं। ऐसे लाखों सौर-मण्डल से मिलकर एक आकाशगंगा बनती है। ऐसी हज़ारों आकाशगंगाओं से मिलकर हमारा पूरा ब्रह्माण्ड निर्मित हुआ है।

कुछ अरब साल पहले यह पूरा ब्रह्माण्ड एक बहुत ही छोटे-से पिण्ड में समाहित था। इस सघन पिण्ड में बड़ा ही ज़बरदस्त विस्फोट हुआ और सारी आकाशगंगाएँ अलग-अलग दिशाओं में छितरा गईं। साल 1929 में एडविन हब्बल ने बताया कि सभी आकाशगंगाएँ हमसे दूर जा रही हैं। जो आकाशगंगा जितनी दूर होगी, उसके दूर जाने की रफ्तार उतनी ही ज़्यादा होगी। एक मायने में ब्रह्माण्ड गुब्बारे की तरह फूल रहा है। चूँकि ब्रह्माण्ड के सभी पिण्डों में एक-दूसरे को खींचने वाला गुरुत्वाकर्षण बल है, इसलिए गुरुत्वाकर्षण की वजह से तो ब्रह्माण्ड का फैलाव मन्द होना चाहिए था। इससे उलट, वो तो तेज़ी-से फैलता जा रहा है। इसका कारण है डार्क एनर्जी।

डॉ. दधिच सरल शब्दों में बताते हैं कि "यह डार्क एनर्जी कोई जादुई ताकत नहीं है। यह अन्तरिक्ष का प्राकृतिक धक्का (the natural intrinsic

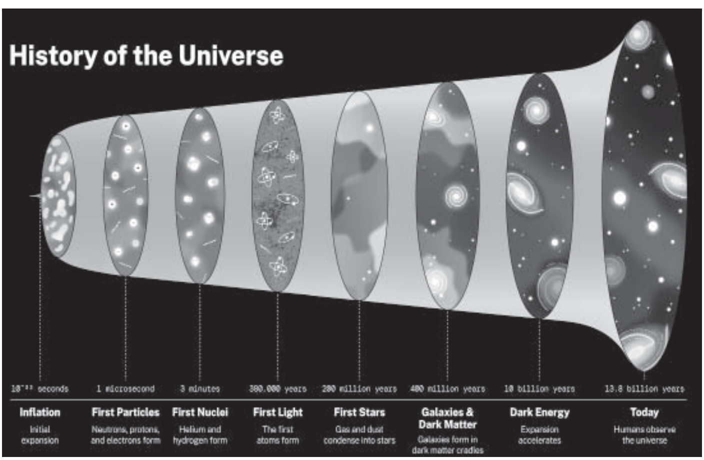

Link - https://science.nasa.gov/dark-energy/

चित्र-2: ब्रह्माण्ड का इतिहास: डार्क एनर्जी और प्रसारित होता हुआ विश्व।

repulsive of space time) है। अन्तरिक्ष इतना बड़ा और विशाल है कि उसमें धक्का देने की ताकत खुद-ब-खुद आ जाती है। यह धक्का गुरुत्वाकर्षण को हराकर ब्रह्माण्ड को तेज़ी-से फैलाता है।" संक्षेप में कहें तो डार्क एनर्जी कोई फर्क शै (वस्तु) न होकर अन्तरिक्ष की खुद की ताकत है।

ब्लैक होल सिर्फ निगलने वाला दैत्य नहीं

डॉ. दधिच ने एक बात और बताई कि ब्लैक होल सिर्फ सब कुछ निगलने वाला दैत्य नहीं है बल्कि वो एक विशाल 'ऊर्जा जनरेटर' है। इनसे भविष्य में कभी शायद ऊर्जा प्राप्त भी की जा सकती है।

यह सवाल कभी-न-कभी मन में आता ही है कि ब्लैक होल कैसे बनते हैं।

तारों के प्रकाशवान बने रहने के लिए हाइड्रोजन नामक ईंधन का उपयोग होता है। चूँकि तारों पर ऑक्सीजन नहीं है इसलिए हाइड्रोजन का दहन नहीं हो सकता। लेकिन दो हाइड्रोजन परमाणुओं का संलयन होता है और परिणाम स्वरूप एक हीलियम का परमाणु और ढेर सारी ऊर्जा निर्मित होती है। हमारा सूर्य भी एक तारा है, उसमें भी संलयन की क्रिया चलती रहती है। सूर्य से 20-30 गुना बड़े तारों में जब ईंधन यानी हाइड्रोजन खत्म हो जाता है तब खुद के गुरुत्वाकर्षण की वजह से वो तारा दबकर छोटा होता जाता है। दबते-दबते उसका आकार कुछ किलोमीटर का रह जाता है लेकिन उसका द्रव्यमान पूर्ववत ही रहता है। ब्रह्माण्ड की तुलना में इस दबते तारे का आकार एक बिन्दु के बराबर कहना चाहिए। इसे ब्लैक होल या कृष्ण विवर कहा जाता है। इसके भीतर गया प्रकाश या इसके भीतर निर्मित प्रकाश ब्लैक होल के गुरुत्वाकर्षण के कारण बाहर नहीं आ पाता।

ब्लैक होल के बीच के हिस्से में एक सघन बिन्दु होता है जिसे सिंगुलैरिटी कहा जाता है। ब्लैक होल के ईवेंट होराइज़न (ब्लैक होल की सीमा) की वजह से वो ढँक जाता है और हमें दिखाई नहीं देता। यदि ब्लैक होल बनने की प्रक्रिया के

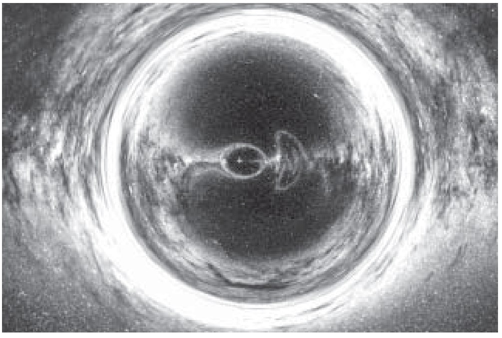

Link - https://www.tifr.res.in/~scicomm/spotlights/2025-01-15-pnass.html

चित्र-3: *एक काल्पनिक नेकेड सिंगुलैरिटी की किरण-आधारित छवि, जो मिल्की वे की पृष्ठभूमि के सामने दिखाई गई है।*

दौरान ईवेंट होराइज़न नहीं बन पाया हो तो सिंगुलैरिटी एक खुला (नेकेड पॉइंट) बिन्दु बना रहेगा।

आइंस्टीन की अवधारणा को चुनौती

साल 1915 में आइंस्टीन ने सामान्य सापेक्षितावाद के सिद्धान्त के सन्दर्भ में यह मत रखा था कि 'गुरुत्वाकर्षण' अन्तरिक्ष और समय की वक्रता (space-time curvature) की वजह से होता है। इस विचार के अनुसार, कोई बड़ा तारा मरते समय अपने गुरुत्वाकर्षण की वजह से दबने लगता है और इसके बीच के हिस्से में अत्याधिक घना बिन्दु निर्मित होता है। यहाँ भौतिकी के नियम लागू नहीं होते। आइंस्टीन को यकीन था कि ब्रह्माण्ड में ऐसे खुले (नग्न) बिन्दु वास्तव में नहीं हैं। उन्हें भरोसा था कि ब्रह्माण्ड में ऐसे अनन्त घनत्व वाले बिन्दु कभी निर्मित नहीं होंगे। सन् 1969 में रोजर पेनरोज़ ने ऐसे बिन्दु को सैद्धान्तिक दृष्टि से प्रमाणित किया।

1970-80 के दशक में डॉ. दधिच ने 'वैद्य मेट्रिक' गणितीय मॉडल का इस्तेमाल करते हुए बताया कि अगर तारे का गुरुत्वीय पतन कुछ फर्क हालात में हो रहा हो तो खुली सिंगुलैरिटी निर्मित हो सकती है। उदाहरणार्थ, यदि गुरुत्वीय पतन काफी तेज़ गति से हो रहा हो तो ईवेंट होराइज़न बनने से पहले सिंगुलैरिटी खुली (नग्न) रहती है।

डॉ. दधिच ने सन् 2001 में यह दिखाया कि चौथे आयाम (डायमेंशन) के तहत हमारे ब्रह्माण्ड में खुली सिंगुलैरिटी सम्भव है। लेकिन पाँचवें, छठे या इससे अधिक आयाम में यह सम्भावना कम होती जाती है और अनन्त आयाम में तो यह खुली सिंगुलैरिटी बिलकुल नहीं बनेगी। इसी वजह से सामान्य सापेक्षितावाद के सिद्धान्त का विस्तार (उदाहरण के लिए, गुरुत्व के रास्ते क्वांटम) ज़रूरी है। डॉ. दधिच ने इस तथ्य को दर्ज करवाया।

डॉ. दधिच ने बताया कि यदि किसी तारे के संघनित होने की गति काफी तेज़ हो तो ब्लैक होल बनने की बजाय खुली सिंगुलैरिटी निर्मित हो सकती है। यहाँ गुरुत्व अनन्त रहता है पर वह बिन्दु दबा हुआ नहीं होता।

हॉकिंग की अवधारणा को चुनौती

सन् 1974 में स्टीफन हॉकिंग ने क्वांटम मेकेनिक्स और सामान्य सापेक्षितावाद का मिलाकर उपयोग करते हुए बताया कि ब्लैक होल पूरी तरह काले-अँधेरे और ठण्डे नहीं होते हैं। उनमें काफी कम ही सही परन्तु तापमान मौजूद होता है। हॉकिंग रेडिएशन (विकिरण) छोड़ते हुए वे छोटे होते जाते हैं और अन्ततः गायब हो जाते हैं।

डॉ. दधिच ने उपरोक्त विचार में आयाम और गॉस-बॉनेट नियमों का

उपयोग करते हुए बताया कि पाँचवें आयाम में बड़े ब्लैक होल अधिक ठण्डे होते हैं तथा छोटे ब्लैक होल ज़्यादा गरम।

हॉकिंग रेडिएशन क्वांटम है, लेकिन दधिच का मानना था कि इसके साथ क्लासिकल वैद्य रेडिएशन (Vaidya radiation) भी ज़रूरी है, क्योंकि क्लासिकल वैद्य रेडिएशन ही वो राह तैयार करता है जिसकी वजह से हॉकिंग रेडिएशन अनन्त दूरी तक पहुँच पाता है।* ब्लैक होल का व्यवहार हाइब्रिड (मतलब क्लासिकल + क्वांटम) है और यह ब्लैक होल बम जैसी परिकल्पना को एक नया आयाम देता है।

क्वांटम प्रभाव की वजह से ब्लैक होल के क्षितिज पर क्षण-भंगुर कणों की जोड़ियाँ बनती हैं। इनमें से एक कण ब्लैक होल के भीतर गिरता है और दूसरा कण बाहर आता है। इसे 'हॉकिंग रेडिएशन' कहा जाता है। भीतर गिरने वाले कण के मुकाबले, यह बाहर आने वाला कण कहीं ज़्यादा ऊर्जा लेकर बाहर आता है। तकरीबन 20-21 प्रतिशत ज़्यादा ऊर्जा मिलती है। यह ऊर्जा ब्लैक होल के परिक्रमण से मिलती है। इसे 'पेनरोज़ प्रोसेस' कहा जाता है।

मैगनेटिक पेनरोज़ प्रोसेस (MPP) डॉ. दधिच का विशेष शोध था। पेनरोज़ प्रक्रिया के दौरान यदि ब्लैक होल के आसपास ज़बरदस्त चुम्बकीय क्षेत्र हो तो क्या होगा?

डॉ. दधिच ने दिखाया कि 20 प्रतिशत नहीं बल्कि 100 प्रतिशत, 200 प्रतिशत और 1000 प्रतिशत तक ज़्यादा ऊर्जा मिल सकती है।

ब्लैक होल एक शक्तिशाली चुम्बक होता है जिसमें चुम्बकीय बल रेखाएँ किसी पंखे की तरह घूमती हैं। इसमें से विद्युत भारित कण तेज़ रफ्तार से बाहर की ओर फेंके जाते हैं। मानो कॉस्मिक कैटापल्ट (ब्रह्माण्डीय गुलेल या गोफन) हो। हम गोफन नामक जुगत से पत्थर को 100-200 मीटर दूर तक फेंक पाते हैं, लेकिन कॉस्मिक कैटापल्ट इतनी ज़बरदस्त होती है कि ये विद्युत भारित कण प्रकाश की गति से लाखों-करोड़ों किलोमीटर दूर तक फेंके जाते हैं। इस ऊर्जा को हम इकट्ठा भी कर सकते हैं। भविष्य में अन्तरिक्ष में बिजली निर्माण के लिहाज़ से यह एक क्रान्तिकारी विचार है।

अधिक आयामी ब्लैक होल (हायर डायमेंशन ब्लैक होल्स)

हम धरती पर आसपास की जगह को समझने के लिए मुख्य रूप से तीन आयामों का इस्तेमाल करते हैं – लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई। ब्रह्माण्ड को समझने के लिए एक और आयाम का उपयोग करते हैं, वह

* *सन् 1941 में प्रह्लाद वैद्य द्वारा बताया गया क्लासिकल रेडिएशन यानी तारे जब प्रकाश उत्सर्जित कर रहे होते हैं, तब उस गुरुत्वीय क्षेत्र की स्थिति को प्रदर्शित करता एक मॉडल।*

है – समय। यानी यहाँ चार आयाम हो गए।

पाँचवें, छठवें, दसवें आयाम में ब्लैक होल कैसे दिखेंगे, डॉ. दधिच ने इसके लिए गणनाएँ की थीं। उदाहरण के लिए, पाँचवें आयाम में ब्लैक होल गोल न होकर, काले-अँधेरे छल्ले की तरह दिखाई दे सकता है।

डॉ. दधिच ने पाँचवाँ आयाम एक्स्ट्रा-स्पेशियल डायमेंशन के रूप में लिया। इसे एक साधारण उदाहरण से समझा जा सकता है।

हम लोग रोज़मर्रा के जीवन में तीन आयाम देखते हैं – लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई। इससे हमें यह पता चलता है कि कोई वस्तु कहाँ है। चौथा आयाम है – समय या टाइम। इससे हमें कोई वस्तु ‘कब’ है, और कब होगी, यह समझ आता है।

डॉ. दधिच बताते हैं कि “सच कहा जाए तो दुनिया में एक और आयाम है – पाँचवाँ आयाम। यह पाँचवाँ आयाम हमें दिखाई नहीं देता, क्योंकि वो काफी छोटे-छोटे लपेटों के रूप में होता है,” जो मान लो, किसी एक महीन तार के भीतर छुपे हुए हों। इसे एक उदाहरण से देखते हैं – बगीचे में पानी सींचने के लिए एक ट्यूब है। इस ट्यूब को जब दूर से देखा जाए तो यह एक रेखा की तरह दिखती है (इसे पहला आयाम कहेंगे)। लेकिन जब पास जाकर ट्यूब को देखेंगे तब नली की गोलाकर चौड़ाई भी दिखाई देगी (यह दूसरा आयाम है)। यह गोलाकर चौड़ाई काफी छोटी होने की वजह से दूर से दिखाई नहीं देती। ऐसा ही कुछ पाँचवें आयाम का भी है - वह बेहद छोटा और लपेटे लिए हुए होने की वजह से हमें दिखाई नहीं देता, लेकिन वो मौजूद है।

पाँचवें आयाम की परिकल्पना की वजह से ब्लैक होल और डार्क एनर्जी का गणित आसान हो जाता है। गुरुत्वाकर्षण और अन्य बल साथ आते हैं और अन्तरिक्ष (स्पेस) में प्राकृतिक धक्का (λ, लैम्ब्डा) खुद-ब-खुद अवतरित हो जाता है, अलग से डार्क एनर्जी की परिकल्पना करने की ज़रूरत नहीं होती। संक्षेप में कहा जाए तो डॉ. दधिच द्वारा अपनी परिकल्पना और गणनाओं में छुपे हुए पाँचवें आयाम को शामिल करने की वजह से ब्रह्माण्ड के सभी रहस्य सरल और सहज रूप से समझ में आने लगे।

ब्लैक होल बम (super radiant bomb)

यदि घूमते हुए ब्लैक होल के आसपास एक दर्पण रखा जाए, तो ब्लैक होल से निकलने वाली तरंगें या किरणें बार-बार उफनती हैं और ऊर्जा भीषण रूप से बढ़ती जाती है। अन्त में एक ज़बरदस्त विस्फोट होता है, इसे ‘ब्लैक होल बम’ कहा जाता है। डॉ. दधिच ने इसके लिए भी पुख्ता गणनाएँ की थीं।

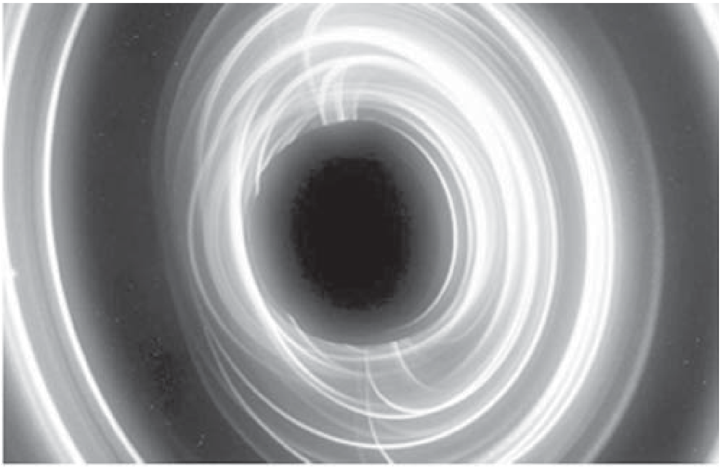

चित्र-4:
ब्लैक होल बम

Link - https://www.newscientist.com/article/2477867-first-ever-black-hole-bomb-created-in-the-lab/

ब्लैक होल विचार से हकीकत तक

ब्लैक होल का विचार धीरे-धीरे विकसित हुआ है जिसे इस तरह समझ सकते हैं कि आप किसी आकाशीय पिण्ड को छोड़कर, उससे बाहर जाना चाहते हैं (यानी उस पिण्ड के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र से बाहर जाना चाहते हैं) तो आपको एक विशेष वेग की ज़रूरत होगी। इस वेग को पलायन वेग (escape velocity) कहा जाता है। चांद से पलायन करने के लिए 2.4 किलोमीटर/सेकण्ड का पलायन वेग ज़रूरी होगा। इसी तरह पृथ्वी से बाहर निकलने के लिए 11 किलोमीटर/सेकण्ड का पलायन वेग चाहिए। सौर मण्डल के बृहस्पति ग्रह पर पलायन वेग 620 किलोमीटर/सेकण्ड है। इसी तरह बढ़ते-बढ़ते हम तारों तक पहुँच सकते हैं और किसी ऐसे पिण्ड तक जहाँ गुरुत्वाकर्षण बल इतना प्रबल हो कि वहाँ पलायन वेग प्रकाश की गति के बराबर हो। ऐसी स्थिति में उस पिण्ड से निकलने वाला प्रकाश पिण्ड से बाहर नहीं निकल पाएगा। मतलब पिण्ड तो है लेकिन दिखाई नहीं देगा। इसे 'ब्लैक होल' कहा गया। काफी समय तक ब्लैक होल केवल एक विचार के रूप में मौजूद रहा।

ब्लैक होल सम्बन्धी आधुनिक समझ की शुरुआत अल्बर्ट आइंस्टीन के सामान्य सापेक्षता सिद्धान्त (1915) से हुई। इसके बाद कार्ल श्वार्ज़शिल्ड ने कुछ गणितीय गणनाओं के आधार पर ब्लैक होल के लिए ईवेंट होराइज़न के रूप में एक सीमा तय की जिसके बाद ब्लैक होल के भीतर का प्रकाश भी बाहर नहीं आ सकता। यानी ईवेंट होराइज़न वह हिस्सा है जिसे देखा जा सकता है। 20वीं सदी में ही सुब्रह्मण्यन चंद्रशेखर ने तारों से व्हाइट ड्वॉर्फ, ब्लैक होल आदि बनने की सम्भावनाओं पर एक शोध प्रस्तुत किया था जिससे नष्ट होते तारों से ब्लैक होल बनने को समझना आसान हुआ। यह सीमा 'चंद्रशेखर लिमिट' के नाम से जानी जाती है।

आगे चलकर, 1960–70 के दशक में ब्लैक होल की भौतिक समझ गहरी हुई। रोजर पेनरोज़ ने गुरुत्वीय पतन (gravitational collapse) को गणितीय रूप से समझाया और सिंगुलैरिटी के अस्तित्व की ओर संकेत किया। इसी दौर में स्टीफन हॉकिंग ने क्वांटम प्रभावों को जोड़ते हुए बताया कि ब्लैक होल पूरी तरह 'काले' नहीं होते, बल्कि वे विकिरण उत्सर्जित कर सकते हैं। इन विकिरण को बाद में हॉकिंग विकिरण (Hawking radiation) कहा गया। इसकी वजह से ब्लैक होल को ऊष्मागतिकी (thermodynamics) और क्वांटम सिद्धान्त से जोड़ा जा सका और यहीं से कई नई पहेलियाँ – जैसे इन्फर्मेशन पैराडॉक्स आदि उभरकर सामने आईं।

संरचना की दृष्टि से ब्लैक होल के कुछ प्रमुख हिस्से माने जाते हैं। सबसे महत्वपूर्ण है ईवेंट होराइज़न, वह सीमा जिसे पार कर ब्लैक होल में जाने के बाद, वापसी सम्भव नहीं है।

इसी तरह ब्लैक होल के केन्द्र में एक अत्यधिक घना बिन्दु है जिसे सिंगुलैरिटी कहा जाता है, जहाँ घनत्व अत्यधिक हो जाता है और वर्तमान भौतिकी के नियम विफल हो जाते हैं। हालाँकि, इसकी वास्तविक प्रकृति को समझने की कोशिशें अभी भी जारी हैं।

आधुनिक खगोल विज्ञान ने अपने नवीन उपकरणों और खोजों की वजह से ब्लैक होल को एक ठोस वास्तविकता के रूप में स्थापित कर दिया है। ब्लैक होल सम्बन्धी शोधकार्यों में अब कई देश मिलकर काम कर रहे हैं। ऐसे दो शोधकार्यों का यहाँ हवाला दिया जा सकता है। पहला, सन् 2015 में लेज़र इंटरफेरोमीटर ग्रेविटेशनल वेव ऑब्ज़रवेट्री (LIGO) ने अपनी स्थापना के बाद सुदूर गुरुत्वीय तरंगों को नापा। ये गुरुत्वीय तरंगें 1.3 अरब प्रकाश वर्ष दूर दो ब्लैक होल के

चित्र-5: यह चित्र इगोर नोविकोव की किताब 'ब्लैक होल्स एंड द यूनिवर्स' से साभार।

टकराव से उत्पन्न हुई थीं। LIGO की उच्च दर्जे की संवेदनशीलता और मापन की वजह से ऐसा अवलोकन दर्ज किया जा सका।

दूसरी घटना है, ईवेंट होराइज़न नामक आकाशीय टेलिस्कोप की मदद से कई देशों में स्थापित रेडियो टेलिस्कोप को जोड़ते हुए एक लक्ष्य पर फोकस करते हुए, दो ब्लैक होल 'मेसर 87' और 'सेजिटेरियस ए' की रेडियो छवियाँ क्रमशः साल 2019 और 2022 में प्राप्त की गईं। इन दो छवियों को पाने के बाद अब स्पष्ट हो चला है कि लगभग हर बड़ी आकाशगंगा के केन्द्र में एक महाविशाल (supermassive) ब्लैक होल होता है और ये ब्लैक होल आकाशगंगाओं के विकास को प्रभावित करते हैं।

फिर भी, हमारी समझ अभी भी अधूरी है। सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक है, सामान्य सापेक्षता और क्वांटम यांत्रिकी का मेल यानी 'क्वांटम गुरुत्वाकर्षण' का सिद्धान्त – सिंगुलैरिटी की असल प्रकृति क्या है, सूचना का क्या होता है और क्या हॉकिंग विकिरण वास्तव में सूचना को वापस ले आता है? ये सभी खुले प्रश्न हैं। इसलिए ब्लैक होल आज भी केवल एक खगोलीय पिण्ड ही नहीं, बल्कि भौतिकी के सबसे गहरे सिद्धान्तों की परीक्षा-स्थली बना हुआ है।

-विविध स्रोतों से संकलित

डॉ. नरेश दधिच (1944-2025): भारत के प्रमुख सामान्य सापेक्षतावादी (general relativist) वैज्ञानिक थे। पुणे स्थित आयुका (IUCAA) के सह-संस्थापक और पूर्व डायरेक्टर। उन्होंने 150 से ज़्यादा शोध पत्र लिखे हैं जिनमें से अधिकांश ब्लैक होल, गुरुत्वीय पतन और कॉस्मोलॉजी जैसे विषयों पर आधारित थे। दुनिया के कई वैज्ञानिक उन्हें 'भारत का चंद्रशेखर' कहते थे। उनका एक प्रमुख कार्य – एम.पी.पी (magnetic penrose process) और उच्च आयामी ब्लैक होल – वास्तव में आइंस्टाइन और हॉकिंग के सिद्धान्त को विस्तार देने वाला है। हाल के बरसों में (2024-2025 में) ये तमाम बातें एक बार फिर चर्चा में आईं और एलआईजीओ (Laser Interferometer Gravitational Wave Observatory) जैसे प्रयोगों को प्रेरणा मिली।

संदर्भ में डॉ. दधिच के दो लेख प्रकाशित हो चुके हैं-

1. गुरुत्व की बारीक बातें (भाग-1), *संदर्भ* अंक-37, अप्रैल-मई, 2001.
2. गुरुत्व की बारीक बातें (भाग-2), *संदर्भ* अंक-38, जून-जुलाई, 2001.

विनय आर.आर.: पिछले कई दशकों से विज्ञान संचारक के रूप में कार्यरत हैं। मराठी विज्ञान परिषद की विविध गतिविधियों में सक्रिय रहे हैं। अभी परिषद की पुणे शाखा के अध्यक्ष हैं।

मराठी से हिन्दी अनुवाद: माधव केलकर: *संदर्भ* पत्रिका से सम्बद्ध हैं।

यह लेख मराठी में प्रकाशित होने वाली *शैक्षणिक संदर्भ* के अंक-157, दिसम्बर 2025-जनवरी 2026 से साभार।

उस प्रतिभाशाली को सलाम

आमोद कारखानीस

चीन के किसी प्रान्तीय अधिकारी के दफ्तर में शुंग लुंग और तांग ची आपस में काम को लेकर बात कर रहे थे। ध्यान रखिए कि यह बातचीत ईसा पूर्व के समय की है।

"आपके द्वारा किसानों से एकत्रित की गई रकम और हिसाब में मेल नहीं हो रहा है। और आपने कितने गंदे तरीके से लिखकर हिसाब बनाया है।"

जवाब मिलता है, "गंदा तरीका, क्या कहते हो? दिनभर में रकम वसूली के लिए दस-दस गाँव घूमने पड़ते हैं। बैठने के लिए कोई जगह भी नहीं। कई बार तो खड़े-खड़े ही हिसाब लिखना होता है। तो ऐसे में सुन्दर लिखावट में साफ-सुथरा कैसे लिखा जाएगा।"

"हाँ, मुझे आपकी दिक्कतों के बारे में पता है। लेकिन हिसाब में संख्याएँ तो स्पष्टता के साथ लिखी होना चाहिए न। यहाँ देखिए, 28 लिखा है या 208? और हमें यहाँ बैठकर कैसे पता चलेगा कि किसान के पास कितनी ज़मीन है? इसी वजह से हिसाब का मिलान नहीं हो पाता।"

चित्र: मणिपद्मा हर्षवर्धन

ऊपर दो लोगों के बीच हो रही बातचीत को पढ़कर आपको भी हैरानी हो रही होगी। उस प्रान्तीय अधिकारी को संख्या को पढ़ने में ऐसी दिक्कत क्यों हो रही होगी जिसकी वजह से हिसाब में इतनी उथल-पुथल मची है?

प्राचीन चीन में संख्या लेखन

चलिए, यह जानने की कोशिश करते हैं कि चीन में उस समय संख्याएँ लिखने का कौन-सा तरीका प्रचलन में

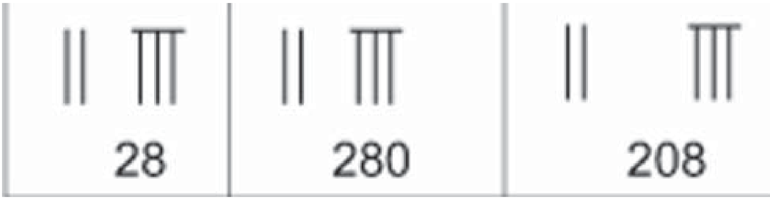

चित्र-1

था। भारत और चीन में स्थानीय मान का इस्तेमाल करते हुए संख्याएँ लिखने का तरीका प्रचलित हुए काफी समय गुज़र चुका था। कागज़ की खोज होने के बाद चीन में इसका इस्तेमाल काफी बढ़ गया था। उस समय चीन के सम्राट का साम्राज्य पूरब में जापान से पश्चिम में कज़ाकिस्तान तक फैला हुआ था। साम्राज्य को कई प्रान्तों में बाँटा गया था। प्रान्त के प्रमुख अधिकारी सभी प्रशासनिक ज़िम्मेदारियों को सँभालते थे। इसके तहत वे विविध कर-वसूली भी करते थे, सड़कें, पेयजल जैसी सुविधाओं की ओर भी ध्यान देते थे, साथ ही अदालत में फैसले सुनाना, सैनिकों को वेतन देना जैसे कई काम उन्हें करने होते थे। इन सभी कामों की रिपोर्ट समय-समय पर अपने ऊपर के अधिकारियों को भी भेजनी होती थी।

इतना समय गुज़र जाने के बाद भी चीन में उस समय की ऐसी कुछ रिपोर्ट व विद्वानों के ग्रन्थ अभी भी उपलब्ध हैं। इन्हें देखकर उस समय स्थानीय मान का इस्तेमाल करते हुए संख्याएँ किस तरह लिखी जाती थीं, इसके कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं। इनके मुताबिक, 1 से 9 तक की संख्याओं को अलग-अलग चिन्हों से दर्शाया जाता था। जहाँ कुछ नहीं हो, वहाँ जगह को खाली छोड़ दिया जाता था (चित्र-1)।

जैसे-जैसे रिपोर्ट में बहुत सारी संख्याएँ लिखी जाने लगीं वैसे-वैसे संख्या लेखन में खाली जगह छोड़ी गई है या नहीं, इसे लेकर भ्रम बढ़ने लगा। लिखी हुई संख्या 208 है या 280 या 28 – ऐसे भ्रम बढ़ते गए। इस परेशानी को हल करने का कोई तरीका तो खोजा जाए, इस पहल के तहत सभी विषम घात वाले इकाई, सैकड़ा, दस हज़ार आदि को खड़ा लिखा जाने लगा। और सम घात वाले दहाई, सैकड़ा, हज़ार और लाख को आड़ा लिखा जाने लगा (चित्र-2)।

इस तरीके की वजह से थोड़ी स्पष्टता आई। यह तरीका काफी समय तक चलता रहा। इसके साथ ही धनात्मक अंक काले रंग और ऋणात्मक अंक लाल रंग से लिखने की परम्परा भी शुरू हुई। इन तमाम कोशिशों से समस्या का कुछ हद तक हल निकल आया था। फिर भी

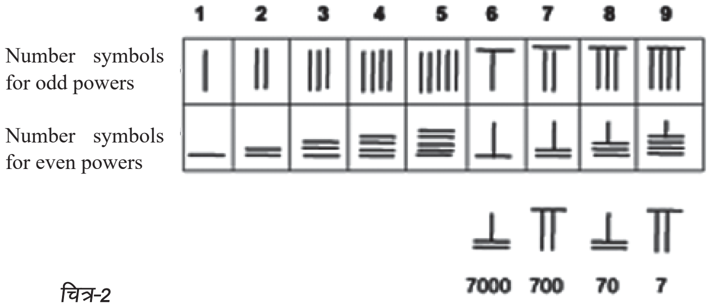

चित्र-2

ऊपर के इन अंकों को लेकर रोज़ ही बहस होती रहती थी। जैसे-जैसे व्यापार बढ़ता गया वैसे-वैसे यह तरीका भी कमतर साबित होने लगा था।

क्या उस समय संख्याओं को लिखने सम्बन्धी दिक्कतें भारत या कहीं और भी दिखाई दे रही थीं?

स्थानीय मान के बिना संख्या लेखन

जहाँ स्थानीय मान का उपयोग करते हुए संख्याएँ नहीं लिखी जा रही थीं, वहाँ तो शायद ऐसी कोई समस्या सामने नहीं आ रही थी।

इस बात के प्रमाण कम ही उपलब्ध हैं कि इस चुनौती के सिलसिले में भारत के लोग क्या करते थे। हमारी परम्परा मौखिक ज़्यादा रही है। अंकों के उच्चारण में किसी जगह शून्य होने पर हम उसका उल्लेख नहीं करते। जैसे 2013 कहना हो तो दो हज़ार तेरह ही बोलते हैं। शायद ही कभी हम दो हज़ार, शून्य सैकड़ा और तेरह बोलते होंगे।

आर्यभट्ट की वैज्ञानिक दृष्टि

भारत गणित में लगातार तरक्की कर रहा था। गुप्तकाल के राजाओं द्वारा उस समय कई विद्वानों को राज्याश्रय दिया गया था जिसकी वजह से ज्ञान की कई शाखाओं में उल्लेखनीय प्रगति हुई। इस दौर में गणित और खगोल विज्ञान के क्षेत्रों में चमचमाता तारा था आर्यभट्ट।

आर्यभट्ट में रोज़मर्रा की घटनाओं या अवलोकनों की गहराई में जाकर विश्लेषण करने की ज़बरदस्त क्षमता थी। उदाहरण के लिए, हम रेलगाड़ी में सफर करते हैं तब डिब्बे के भीतर बैठे सहयात्री तो सापेक्ष रूप से स्थिर रहते हैं लेकिन डिब्बे के बाहर के पेड़, खम्बे, इमारतें, खेत पीछे जाते हुए प्रतीत होते हैं। हम तो अक्सर गीत भी गुनगुनाते हैं –

देखते हुए पीछे दौड़ते दरख्तों को,
और पहुँच जाएँगे मामा के घर को।

आर्यभट्ट के दौर में रेलगाड़ी तो नहीं थी इसलिए रेलगाड़ी की सवारी

का अनुभव उन्हें नहीं था। लेकिन वे पाटलीपुत्र के निवासी थे इसलिए गंगा के लम्बे-चौड़े किनारों पर नाव से सफर का उनका अनुभव वृहद था। नदी की धार में नाव पर सफर करते समय नाव पर सवार लोग तो सापेक्षिक रूप से स्थिर रहते हैं लेकिन किनारे के पेड़ और इमारतें तो पीछे जाती हुई प्रतीत होती हैं।

हालाँकि, यह एक सामान्य-सी दिखने वाली बात है, और रोज़मर्रा के जीवन में शायद ही कोई इस पर बहुत सोच-विचार करता हो। आर्यभट्ट ने इस अनुभव को एक नए स्तर पर ले जाकर इसे खगोल शास्त्र से जोड़ा। उस समय यह माना जाता था कि पृथ्वी स्थिर है और पूरा आकाश उसके चारों ओर घूमता है। इसके विपरीत, आर्यभट्ट का मानना था कि पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है, जिससे दिन और रात होते हैं। हमें भले ही सूर्य और तारे चलते हुए प्रतीत होते हैं, पर वास्तव में पृथ्वी ही घूम रही होती है।

इसके अलावा, उन्होंने यह भी बताया कि पृथ्वी गोलाकार है। उस समय यह विचार रखना भी अत्यन्त साहस का काम था। उन्होंने पृथ्वी के अध्ययन के लिए 'भूगोल' शब्द का प्रयोग किया। अब अगला सवाल था कि यदि धरती गोल है तो उसका व्यास कितना है और वो अपनी धुरी पर कितने समय में एक चक्कर पूरा कर लेती है।

शून्य का क्रान्तिकारी योगदान

ऐसे सवालों के जवाब खोजने के लिए सूक्ष्म अवलोकनों और जटिल गणनाओं की ज़रूरत थी। इतने विस्तृत गणितीय कार्य के लिए केवल 1 से 9 तक के अंक पर्याप्त नहीं थे। संख्याओं को सटीकता से लिखने के लिए एक और अंक की ज़रूरत पड़ी और वो अंक था, शून्य।

आर्यभट्ट के कार्यों का प्रभाव उनके अनेक समकालीन गणितज्ञों और खगोलशास्त्रियों पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। सरसरी तौर पर, ईस्वी सन् की शुरुआत से लेकर 600 ईस्वी तक रचे गए कई ग्रन्थों में 'शून्य' का ज़िक्र मिलता है। वराहमिहिर के 'पंचसिद्धान्तिका' ग्रन्थ में भी शून्य का ज़िक्र है। इसी प्रकार जिनभद्रगणि के ग्रन्थ में 2,24,40,00,00,000 जैसी बड़ी संख्या का उल्लेख मिलता है, जिसे 'बाइस चवालिस पर आठ शून्य' कहा गया है।

उस समय भारत में अत्यन्त विशाल संख्याओं के साथ गणना की जाती थी, जिसका एक उदाहरण सिद्धसेनगणि के ग्रन्थ में मिलता है। इसमें 35,34,40,00,00,000 जैसी संख्या का वर्गमूल निकालने का उल्लेख है, जिसमें चार शून्य आते हैं और उसका वर्गमूल 18,80,000 बताया गया है।

धीरे-धीरे शून्य का इस्तेमाल काफी

जगहों पर होने लगा। ग्वालियर के भोजदेव मन्दिर में मौजूद एक शिलालेख में 870 अंक लिखा हुआ मिलता है, जो शून्य के प्रयोग का एक ठोस प्रमाण है। इसके अलावा, शून्य का प्रसार भारत से बाहर भी हुआ। कंबोडिया के प्राचीन हिन्दू मन्दिरों में मौजूद कुछ शिलालेखों में भी शून्य के इस्तेमाल के प्रमाण मिलते हैं।

शून्य की स्वीकृति व वैचारिक संघर्ष

फिर चीन के दो लोगों – शुंग लुंग और तांग ची का क्या हुआ? उनकी समस्या का क्या कोई समाधान निकल पाया?

उनकी समस्या का हल कुछ इस तरह निकला कि भारतीय व्यापारियों और यात्रियों के माध्यम से शून्य का चिन्ह और अंक चीन तक पहुँच गए। भारतीय मूल के, लेकिन चीन में निवास करने वाले खगोलविद् गौतमन सिद्ध ने चीनी अंकों के साथ शून्य के इस्तेमाल की जानकारी सभी को दी, जिसे बाद में स्वीकार भी कर लिया गया।

शून्य का सफर चीन तक तो पहुँच चुका था लेकिन यूरोप का क्या हुआ? वहाँ गणित और खगोल का अध्ययन दर्शनशास्त्र के अन्तर्गत किया जाता था, इसलिए वहाँ धर्म, दर्शन और विज्ञान के धागे आपस में गुँथे हुए दिखाई देते थे। कभी इस बात का फायदा होता था तो कभी इन धागों में उलझकर आप गिर भी सकते थे – शून्य का भी ऐसा ही कुछ हुआ। हालाँकि, इण्डो-अरेबिक अंकों को स्वीकार कर लिया गया था, फिर भी 'कुछ नहीं' के लिए किसी चिन्ह की आवश्यकता है या नहीं, इस पर मतभेद बने रहे। आखिरकार, बीच का रास्ता यह निकाला गया कि एक से

चित्र-4: ग्वालियर के भोजदेव मन्दिर में स्थित शिलालेख पर शून्य का उपयोग।

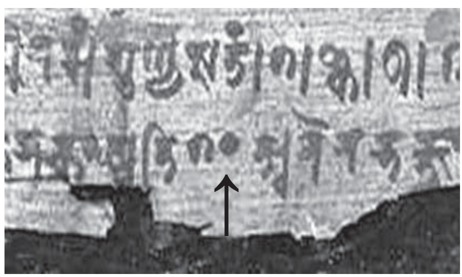

चित्र-5: बक्षाली हस्तलिखित में शून्य। बक्षाली पाण्डुलिपि की खोज सन् 1881 में पेशावर के पास बक्षाली में हुई थी। यह लगभग तीसरी से दसवीं शताब्दी ईस्वी के बीच की मानी जाती है।

चित्र-6: महान गणितज्ञ - आर्यभट्ट।

और आखिरकार तर्क और विवेक की ही जीत हुई।

शून्य केवल एक संकेत है या एक संख्या भी – यह प्रश्न महत्वपूर्ण है। आप कह सकते हैं कि इससे क्या फर्क पड़ता है। संख्या भी बुनियादी तौर पर एक अमूर्त विचार है। किसी वस्तु-समूह को 'तीन का समूह' या 'आठ का समूह' कहकर हम उसे एक रूप देते हैं और फिर उसे दर्शाने के लिए एक चिन्ह गढ़ते हैं, यहाँ तक तो सब ठीक था। लेकिन 'कुछ भी नहीं' के समूह को एक चिन्ह से व्यक्त करना, और उस चिन्ह के माध्यम से एक गहरी अवधारणा को प्रस्तुत करना, मानव बुद्धि की एक विशाल छलांग थी। आर्यभट्ट ने शून्य को सिर्फ खाली स्थान नहीं बल्कि उसे अन्य संख्याओं की तरह एक संख्या का दर्जा भी दिया।

इसी सोच के कारण भारत में गणित ने एक लम्बी उड़ान भरी। शून्य को लेकर इस नए विचार के लिए इस प्रतिभाशाली गणितज्ञ को सलाम।

नौ तक की संख्याएँ तो थीं ही, तो क्यों नहीं खाली स्थान को दर्शाने के लिए शून्य का इस्तेमाल किया जाए।

कुछ विचारधाराओं में यह भी माना जाता था कि जैसी कि कहावत है 'खाली दिमाग शैतान का घर' होता है, वैसे ही कुछ नहीं के लिए जो चिन्ह है, वो शैतान का प्रतीक है। इसलिए पवित्र ग्रन्थों में इस चिन्ह को जगह नहीं मिलनी चाहिए। लेकिन विज्ञान की तरक्की में पुरातन मान्यताएँ भी अवरोध नहीं बन सकीं

आमोद कारखानीस: पेशे से कम्प्यूटर इंजीनियर। लेखन एवं चित्रकारी का शौक। मुम्बई में रहते हैं।

मराठी से अनुवाद: माधव केलकर: *संदर्भ* पत्रिका से सम्बद्ध हैं।

Ever wondered why banks give interest... or how loans really work?

From exchanging goods in old times to using digital money today, the world of finance is full of questions - especially for curious minds!

Money, Banking and Credit is an engaging and easy-to-understand module designed especially for middle-school students. It unpacks everyday concepts like money, banks, loans, and interest through relatable questions and clear explanations.

Perfect for students eager to understand how money works, teachers looking for accessible learning material and anyone curious about the basics of finance.

NEW PUBLICATION

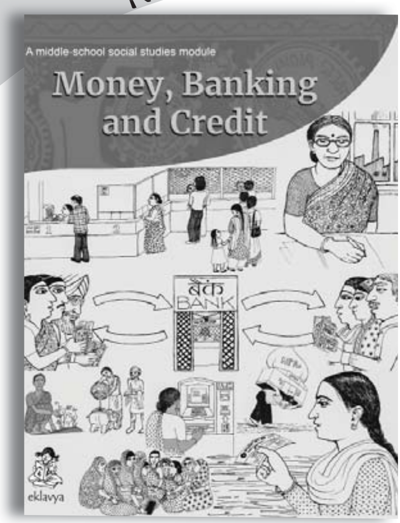

Money, Banking and Credit

Price: ₹ 85.00

एकलव्य

Eklavya Foundation

Jamnalal Bajaj Parisar, Jatkhedi, Bhopal (MP) 462 026

Phone: +91 755 297 7770-71-72

Email: pitara@eklavya.in

www.eklavya.in | www.eklavyapitara.in

सीखने के अवसर

अमित और जयश्री

सुनील, प्रकाश और सुरेश अधिकतर हमारे घर के इर्द-गिर्द घूमते रहते थे। इन तीनों के परिवार आदिवासी मुक्ति संगठन से जुड़े हुए थे। *आधारशिला* के पहले साल में अधिकांश बच्चे संगठन के कार्यकर्ताओं के ही थे। तीनों में सुनील बड़ा था। सुरेश और प्रकाश लगभग एक ही उम्र के थे। सात-आठ साल के रहे होंगे तीनों। एक बार ऐसे ही बातों-बातों में हमने उनसे पूछा, "तुम सब अपनी भाषा कैसे सीख गए? क्या किसी ने तुम्हें बैठाकर सिखाया?" सुनील ने कहा, "बड़ों को सुन-सुनकर सीखी है। जब कोई काम हो रहा होता है और बच्चे वहाँ खड़े होकर देखते रहते हैं तो उस काम सम्बन्धी शब्द सीख जाते हैं। जैसे बड़े लोग बोलते हैं, वही बात बच्चे भी सीख जाते हैं।" कितनी सामान्य-सी बात थी और कितनी स्वाभाविक। सैकड़ों शिक्षाशास्त्रियों ने बच्चों को भाषा सिखाने पर पीएच.डी. कर रखी है। हम लोग शिक्षाशास्त्र नहीं जानते थे। लेकिन जब स्कूल शुरू किया तो इसके बारे में सोचना और सीखना शुरू कर दिया।

एकलव्य संस्था से हमारी पुरानी दोस्ती थी। इनकी पत्रिका हमारे पास आती थी। उसमें प्रकाशित एक लेख से हमें पता चला कि अक्षरों को अलग से सिखाने में बच्चों के दिमाग में क्या गड़बड़ हो सकती है। मुझे याद है, उस लेख में एक मछली का चित्र था। लेख में व्याख्या की गई थी कि 'मछली' शब्द सिखाते वक्त यदि म छ ल अलग से और ी की मात्रा अलग से सिखाई जाए तो इस तरीके से बच्चों के दिमाग पर क्या असर पड़ेगा। हमें उस समय यह समझ में नहीं आता था कि ऐसी बातों को कितनी गम्भीरता से लिया जाए। इस लेख में मछली का चित्र ज़रूर आकर्षक था जिसे हमने प्रिंट करवाकर रख लिया था। खैर, इस सब ज्ञान-निर्मिती के बाद भी यह सच्चाई हमारे सामने थी कि देश के अधिकतर बच्चे प्राथमिक कक्षाओं में पढ़ना-लिखना नहीं सीख पा रहे हैं। आज भी यह स्थिति बरकरार है। हालाँकि, यह लेख इस विषय पर आधारित नहीं है।

सुनील, प्रकाश और सुरेश की बातचीत पर लौटते हैं। एक ही वाक्य में इन्होंने बता दिया कि बच्चे भाषा कैसे सीखते हैं। यह बात हमें जँच गई। जब ट्यूबवेल खुद रहा था और बच्चे वहाँ दिनभर बैठे हुए थे तब भी

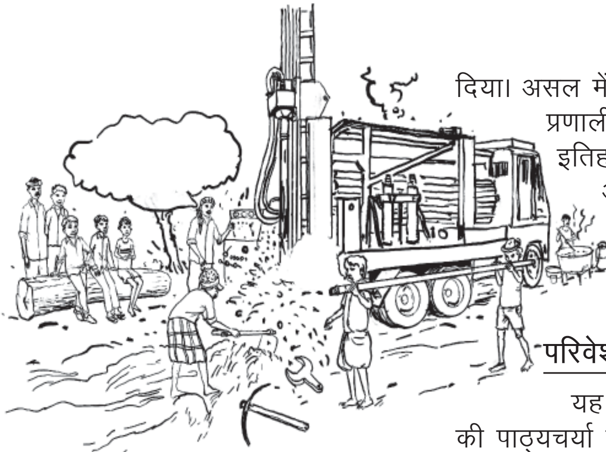

दिया। असल में, इस तरह की शिक्षा प्रणाली को गढ़ने का इतिहास तो अलग ही है और राजनीति का हिस्सा भी है। उसका ज्ञान से खास लेना-देना नहीं है।

वे ट्यूबवेल खुदाई सम्बन्धित शब्द सीख रहे थे, जैसे पाइप, गहरा, बिट, ड्रिल आदि। ड्रिलिंग का काम करने वाले लोगों की बातें सुन रहे थे। इसी बात को यदि आगे बढ़ाया जाए तो भाषा ही क्यों, इन्सानों ने अपनी लाखों साल की यात्रा में कुछ भी कैसे सीखा है? देखकर, सुनकर, करके। अन्य इन्सानों से, जानवरों से, पूरी प्रकृति के बहुत बारीक और सदियों तक चलने वाले अवलोकन एवं अन्वेषण से। विज्ञान के शुरुआती दौर में भी कितने ही असफल प्रयोगों के बाद बल्ब जैसी साधारण चीज़ विकसित हो पाई थी। कोई चीज़ बनाने के दौरान हुए प्रयोगों और अवलोकनों से ही तो ज्ञान-निर्मिति हुई। तो हमने अचानक ऐसा कैसा शिक्षाशास्त्र रचा जिसमें किताबें पढ़कर याद करने को हम सीखना कहने लगे? कितनी ही पीढ़ियों को हमने कुछ करने के आनन्द और सही मायने में कुछ सीखने से वंचित कर

परिवेश से सीखना

यह विचार *आधारशिला* की पाठ्यचर्या की बुनियाद बन गया - अपने आसपास घटित हो रही चीज़ों को देखकर और सुनकर सीखना। इसलिए हमारा काम था, आसपास घटित हो रही चीज़ों को एक सीखने के मौके के रूप में देखना। इसी को हम 'सीखने के अवसर' कह रहे हैं। शिक्षक का काम है, ऐसे मौके पहचाने और बच्चों को उनमें शामिल करने के सार्थक तरीके खोजे।

एक अलग दृष्टिकोण से देखें तो बच्चों के सीखने-सिखाने के विषय वही होने चाहिए जो उनके आसपास मौजूद हों। अपने परिवेश और उसमें घटित होने वाली घटनाओं को जानना और समझना सबसे पहली आवश्यकता है। बच्चे भी सबसे पहले अपने आसपास की दुनिया को ही खोजते और समझते हैं।

हालाँकि, अनुभव यह भी बताते हैं कि बच्चे अमूर्त समस्याओं पर भी सार्थक ढंग से विचार कर सकते हैं, फिर भी उनके लिए अपने परिवेश

और समाज को समझना अत्यन्त आवश्यक है। शिक्षाशास्त्र में 'ज्ञात से अज्ञात' के सिद्धान्त पर बहुत ज़ोर दिया जाता है, लेकिन यह सिद्धान्त स्कूल के पाठ्यक्रम में कम ही दिखाई देता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि हमारा परिवेश ही हमारा पाठ्यक्रम होना चाहिए, कम-से-कम उसका एक महत्वपूर्ण हिस्सा तो अवश्य ही होना चाहिए।

नामकरण की चुनौती

आधारशिला का नाम रखते समय हमने हिन्दी में 'सीखने' का ऐसा पर्यायवाची शब्द खोजने की कोशिश की जिसे स्कूल के नाम में शामिल किया जा सके, लेकिन हमें उपयुक्त शब्द नहीं मिला। अन्ततः नाम 'आधारशिला लर्निंग सेंटर' ही रखा गया और हिन्दी में 'शिक्षण केन्द्र' लिखना पड़ा। हालाँकि 'शिक्षण' शब्द में शिक्षा देने का भाव अधिक प्रकट होता है, जबकि हमारी कल्पना में *आधारशिला* एक ऐसी जगह थी जहाँ सीखने का माहौल हो, जहाँ बच्चा किसी भी रूप में, अपनी रुचि और प्रेरणा से सीख सके। यह बात हमारे मूल विचार से भी जुड़ी है, क्योंकि सीखने की प्रक्रिया में सीखने वाले की सहमति और खुशी अत्यन्त बुनियादी एवं ज़रूरी तत्व होते हैं।

स्थानीय जीवन से उभरते विषय

अपने परिवेश को समझने और खोजने की दृष्टि से जब हमने विषयों पर विचार करना शुरू किया, तो शुरुआत में लगा कि इसमें अलग से सोचने की क्या ज़रूरत है, जो आसपास घटित हो रहा है, उसी में बच्चों को शामिल कर लिया जाए। जैसे, जब पानी के लिए ट्यूबवेल की खुदाई हो रही हो तो उसी को समझने में लग जाएँ, या जब एकत्रित की गई फसल में चूहे लग जाएँ तो चूहों को ही अध्ययन का विषय बना लें। यह सब हमें भले ही बहुत सहज लगता था, लेकिन किसी भी शिक्षक के लिए यह तरीका व्यवहारिक रूप से कठिन था। यह काफी हद तक बेतरतीब (रैंडम) था। इसलिए इसे व्यवस्थित करना ज़रूरी था। दो वर्षों के अनुभव के आधार पर जो विषय उभरकर सामने आए, उन्हें एक क्रम में व्यवस्थित करने की कोशिश की गई। ये विषय स्थानीय परिवेश और बच्चों के जीवन से गहराई से जुड़े हुए थे।

इस क्रम में सबसे पहले 'मौसम' सामने आया, क्योंकि हम हर समय किसी-न-किसी मौसम में ही रहते हैं। गाँव में मौसम के साथ सब कुछ बदल जाता है – न केवल प्रकृति, बल्कि लोगों की दिनचर्या, कामकाज और बातचीत भी। इसलिए मौसम हमारे लिए एक महत्वपूर्ण विषय बन गया – बारिश, गर्मी और सर्दी। इनके साथ अपने आसपास के कई अन्य विषय भी स्वाभाविक रूप से जुड़ते

गए, जैसे हाट, दादा-दादी, गुवालिया (जानवर चराने वाले जो अधिकतर बच्चे होते हैं), जीप, खेत, बाबा, घर, गाँव, अकाल, कुपोषण, स्वास्थ्य, और खबरों में आने वाली घटनाएँ जैसे ईरान-इराक युद्ध। इसके अलावा संगठन की रैली, सम्मेलनों में भाग लेना, और स्कूल में आने वाले मेहमानों से संवाद जैसी गतिविधियाँ भी इसमें शामिल रहीं। चूहों और दीमक के बारे में तो आप पिछले लेखों में पढ़ ही चुके हैं।

अनुभव आधारित शिक्षण

यह उस समय की कक्षा की बातें हैं, जब हमने इन विषयों से जुड़ाव बनाने के लिए कोई ठोस ढाँचा तैयार नहीं किया था। बातचीत शुरू होती थी, फिर बीच में ही रुक जाती थी। कभी-कभी उसके बीच में गणित और भाषा की गतिविधियाँ भी आ जाती थीं।

जिस समय यह प्रक्रिया चल रही थी, उस समय सर्दी का मौसम था। किसी भी विषय की शुरुआत करने से पहले हम बच्चों से उससे जुड़े उनके अनुभव पूछते थे। बच्चों ने बताया कि सर्दियों में त्वचा फट जाती है, ठण्ड लगती है, कम्बल-रज़ाई ओढ़कर सोते हैं, दिन छोटे हो जाते हैं आदि।

हमने कहा, "चलो, इन बातों को लिख लेते हैं। तुमने जो बताया है, उसे तो लिखना ही है, साथ ही दूसरों की बताई बातों को भी लिखो।" इस तरह सर्दी से जुड़ी सभी बातों को लिख लिया गया।

फिर हमने पूछा, "ठण्ड के मौसम में अपने आसपास और क्या-क्या होता है या बदलता है?" 'आसपास' का मतलब खेतों में, पेड़-पौधों में, और जीवन के अन्य पहलुओं में होने वाले बदलावों से था।

इसी बीच गणित पढ़ने का समय हो गया, तो बच्चों से कहा, "चलो, इन बातों को कल लिखकर ले आना।"

अगले दिन तो बातों का मानो ढेर लग गया। ब्लैकबोर्ड पूरी तरह भर गया। अब सवाल था कि इतनी सारी बातों को दिमाग में कैसे व्यवस्थित किया जाए, "कौन-सी बातें एकजैसी लग रही हैं?" वर्गीकरण करना

हमारी प्रिय गतिविधि थी। यह विज्ञान शिक्षण से भी जुड़ती थी।

हमने उन्हें अलग-अलग समूहों में बाँटना शुरू किया – खेत से जुड़ी बातें, चिड़िया-जानवरों से सम्बन्धित बातें, और लोगों के कामकाज से जुड़ी बातें। फिर बच्चों से कहा, "अब इन अलग-अलग विषयों पर कल लिखकर लाना। जो भी सर्दी के मौसम से जुड़ी बात समझ में आए, उसे लिखकर ले आना।" इस तरह सर्दी के मौसम पर अच्छे-खासे निबन्ध तैयार हो गए।

बच्चों के अनुभवों से हमारे मन में कई तरह के प्रश्न पैदा हुए, जिन पर हम उनसे बातचीत कर सकते थे। जैसे ठण्ड में त्वचा क्यों फटती है? वैसलीन लगाने से कुछ समय के लिए राहत क्यों मिलती है? ठण्ड का मौसम क्यों आता है और फिर क्यों चला जाता है? कम्बल ओढ़ने पर ठण्ड लगना कम क्यों हो जाता है? कुछ पक्षी सिर्फ सर्दियों में ही क्यों दिखाई देते हैं? ठण्ड में मुँह से भाप क्यों निकलती है? आदि।

इस तरह हमारे पास लगभग एक सप्ताह का काम तैयार हो गया, जिसके माध्यम से बच्चों के साथ विज्ञान और भूगोल से जुड़ी बातें की जा सकती थीं। लेकिन कई बार लगता था कि बच्चों में इन विषयों को गहराई से जानने की विशेष रुचि नहीं है। दिव्या के चेहरे से ज़रूर कभी-कभी कुछ जानने की जिज्ञासा झलकती थी।

वैज्ञानिक सोच की यात्रा

बच्चों की ओर से स्वाभाविक उत्सुकता कम होने के बावजूद हम इन बातों का अर्थ खोजने और उन्हें समझाने का मोह नहीं छोड़ पाए। समझाने के दौरान बच्चों में कुछ रुचि भी पैदा हो जाती थी। किसी बात का कारण समझाकर हम इस बात पर विशेष ज़ोर देते थे कि बच्चे उसे लिखें। किसी कारण को अच्छी तरह समझकर लिखने से, वह विचार मन में स्पष्ट हो जाता है। क्रमबद्ध ढंग से लिख पाना एक ऐसी कुशलता है, जो अपने आप विकसित नहीं होती। हमें लगता था कि विज्ञान की समझ के लिए यह आवश्यक है। इन्हीं प्रक्रियाओं के माध्यम से बच्चों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने की दिशा में आगे बढ़ा जा सकता था।

हम अपनी ओर से भी अवलोकन के कुछ विषय जोड़ देते थे। जैसे, सूर्य कहाँ से निकलता है? इसे अलग-अलग समूहों के बच्चे पूरे वर्ष बीच-बीच में देखते रहते थे। इसी तरह, खेतों में क्या होता है? इस मौसम में लोग क्या काम करते हैं? आदि। इस

प्रकार हर मौसम से जुड़े अनेक अवलोकन और प्रश्न सामने आ जाते थे। जैसे किसी भी विषय पर बातचीत करते समय बच्चों के अनुभवों को समझना ज़रूरी होता था, उसी तरह विषय से सम्बन्धित अवलोकन करना भी एक अनिवार्य हिस्सा था।

हर मौसम में चिड़ियों का अवलोकन करना, उसे एक चार्ट पर दर्ज करना – कहाँ देखी, कब देखी, किसने देखी। ये सब गतिविधियाँ नियमित रूप से की जाती थीं। अवलोकन विज्ञान शिक्षण की एक बुनियादी इकाई है, जिस पर हम विशेष रूप से ज़ोर देते थे।

समसामयिक विषय

छोटे बच्चों के लिए कुछ वर्षों में विषय लगभग तय हो गए थे, और प्रत्येक विषय के अन्तर्गत कराई जाने वाली गतिविधियाँ भी निर्धारित थीं। इन विषयों को शिक्षकों और बच्चों, दोनों के लिए एक स्पष्ट ढाँचे में लाना ज़रूरी लग रहा था। लेकिन बड़े बच्चों के समूह में अक्सर उनकी चल रही चर्चाओं से ही नए विषय उभरकर सामने आ जाते थे। स्कूल में रोज़ अखबार आता था और बच्चे उसे बड़े चाव से पढ़ते थे। जब ईरान-ईराक का युद्ध चल रहा था, उस समय बच्चे रोज़ उससे जुड़ी खबरें पढ़ते थे। तरह-तरह की मिसाइलों, बन्दूकों और बमों के नाम उन्हें याद हो गए थे। अन्ततः यह प्रश्न सामने आ ही गया – आखिर युद्ध होता क्यों है?

राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय खबरों का एक बड़ा लाभ यह भी था कि बच्चों को अनेक देशों, राज्यों और शहरों के नामों की जानकारी मिलती

थी, जिन्हें वे अपने एटलस में खोजते थे। *आधारशिला* की यह खासियत थी कि तीसरी कक्षा से ही बच्चों को एटलस दिलवाया जाता था, और वे बड़े उत्साह से नक्शे देखते थे। एटलस को समझना सीखने के लिए

भी अनेक गतिविधियाँ तैयार की गई थीं।

रूखी-सुखी का निर्माण

एक बार इस क्षेत्र के आदिवासी मुक्ति संगठन ने अकाल राहत के लिए रैली निकाली। बच्चों को भी कॉपियों के साथ रैली में भेजा गया। वहाँ उन्होंने 'अकाल' शब्द कई बार सुना। रैली का पर्चा भी कक्षा में पढ़ा गया और अखबार से भी अकाल की खबरें बच्चे अपनी कॉपियों में लिख रहे थे। तभी एक बच्चे ने कहा, "साकड़ (जिस गाँव में *आधारशिला* स्थित है) में तो अकाल नहीं है।" हमने पूछा, "ऐसा क्यों लग रहा है तुम्हें?" उसने जवाब दिया, "यहाँ तो खेत हरे-भरे दिख रहे हैं।" कितनी साधारण-सी बात थी, जो उसने अपनी नज़र से देखी थी। ज़ाहिर है, जिन लोगों के खेत हरे दिख रहे थे, उनके पास ज़रूर सिंचाई के कुछ साधन थे। इस सवाल से प्रेरणा लेते हुए हमने बच्चों से कहा, "तुम सब गाँव जाओ और पूछो कि लोगों को क्या लगता है, इस वर्ष अकाल है या नहीं।"

जब बच्चे वापस आए तो वे बहुत ही उत्साहित थे। गाँव के लोगों ने उन्हें ढेर सारी बातें बताईं। जब हमने एक-एक ग्रुप से सुनना शुरू किया, तो समझ आया कि गाँव के बुज़ुर्गों ने पुराने अकालों की बातें बताईं थीं जो उन्होंने भी अपने बूढ़ों से सुनी होंगी। अकाल के बारे में हमारी समझ भी उतनी गहरी नहीं थी जितनी इन बच्चों द्वारा इकट्ठा की गई जानकारी से बनी। उन्हें टिड्डी काल के बारे में भी पता चला, जब इतने सारे टिड्डे आ धमके थे कि दिन में भी अँधेरा-सा छा जाता था। टिड्डे एक तरफ से खेत साफ करने बैठते और पूरी लाइन के समस्त खेत साफ हो जाते। उन्हें किसी भी तरह से भगाना भी सम्भव नहीं था।

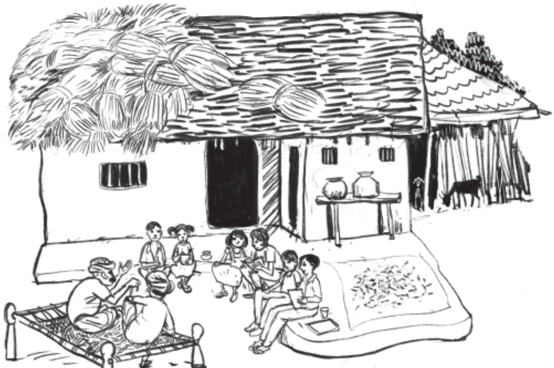

इसके अलावा उन्हें छपनिया अकाल के बारे में बताया गया, जिसमें बहुत सारे गाँवों के लोग मर गए थे और केवल इक्के-दुक्के लोग ही बचे थे। हालात इतने दुश्वर थे कि कुछ लोग मर चुके बच्चों

का मांस खाकर किसी तरह ज़िन्दा रहे। उस समय राहत के लिए राजा द्वारा दी गई मदद की भी चर्चा हुई।

अब समस्या आई कि इतनी सारी जानकारियों को व्यवस्थित कैसे किया जाए। बच्चों को समूहों में बाँटा गया और प्रत्येक समूह को एक प्रश्न दिया गया। प्रत्येक समूह ने बाकी सभी समूहों से मिली उस प्रश्न-विशेष से सम्बन्धित जानकारी को अपने पास लिख लिया। इस तरह प्रश्नों के माध्यम से सारी जानकारी व्यवस्थित की गई। धीरे-धीरे यह प्रक्रिया एक किताब का रूप लेने लगी। पुराने ज़माने का पतला-सा कागज़, जिसे किसी ऑफिस वाले ने स्कूल को दिया था, उसी पर बच्चों ने लिखना शुरू कर दिया था और साथ ही, उन्होंने चित्र भी बनाए।

देखते ही देखते, बारह-तेरह साल के एक बच्चे का मासूम-सा सवाल धीरे-धीरे एक गम्भीर सर्वेक्षण शोध में तब्दील हो गया। बच्चों की इस शोध का ज़िक्र, शिक्षाविद् अनिल सदगोपाल द्वारा एनसीईआरटी के 'वर्क इन एजुकेशन' ग्रुप की रिपोर्ट में एक उदाहरण के रूप में भी किया गया। बाद में, यह शोध *एकलव्य* द्वारा प्रकाशित किताब *रूखी-सुखी* के रूप में सामने आया।

रूखी सुखी के बनने से बच्चों को यह भी समझ आया कि दरअसल, किताब कोई भी लिख सकता है। और यह किताब तो उन्होंने अपने ही 'अनपढ़' बड़े-बुजुर्गों की बातों को लिखकर बनाई थी। इस प्रक्रिया में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सवाल भी जन्मा – किताब में जो लिखा होता है, वह लेखक को कहाँ से पता चलता है? जिसका उत्तर समझ में आया कि वह तो साधारण लोगों से ही पता चलता है। इसलिए किताब में कभी-कभी कुछ बातें किसी के हिसाब से गलत भी हो सकती हैं।

यह चित्र रूखी-सुखी किताब से साभार।

यह बहुत बड़ी बात थी। हमारी भाषा में कहें तो जहाँ एक तरफ बच्चों द्वारा ज्ञान की सृजन प्रक्रिया हो रही थी, वहीं किताब और ज्ञान के अटूट सम्बन्ध को बच्चे चुनौती दे रहे थे। 'अनपढ़=अज्ञानी' वाला समीकरण पूरी तरह ध्वस्त हो गया था और बच्चे अपने माता-पिता और

समाज के बुज़ुर्गों को एक नई इज़्ज़त से देखने लगे थे।

किसी भी ज्ञान के सन्दर्भ में, यह आदिवासी बच्चों के लिए बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि सामान्य शिक्षा व्यवस्था ऐसे समाज के बच्चों को यह सिखाती है कि उनका समाज हीन है और पढ़ा-लिखा वर्ग श्रेष्ठ है। **मुक्तिदायी शिक्षा** का एक बड़ा हिस्सा यही है – अपनी और अपने समाज की वह शर्म, जो बच्चों में होती है, उसे तोड़ना और उसकी जगह अपने प्रति आत्मसम्मान जागृत करना। यह बात पाठ्यक्रम के लिहाज़ से उस वक्त बेहद ज़रूरी हो जाती है, जब हम शोषित वर्ग के बच्चों की शिक्षा पर विचार करते हैं।

इससे हम देख सकते हैं कि परिवेश को पाठ्यक्रम में शामिल करने से बच्चे अपनी ज़िन्दगी को बेहतर ढंग से समझ पाते हैं।

बच्चों से इस पर भी चर्चा हुई कि किताब के पहले पन्ने पर बने 'C' के चिह्न का क्या मतलब होता है और इस किताब का कॉपीराइट किसके पास होना चाहिए – *एकलव्य* के पास या हमारे पास, या कॉपीलेफ्ट होना चाहिए ताकि सभी इस जानकारी का उपयोग कर सकें।

इन पूरे पन्द्रह-बीस दिनों तक बच्चों और हम शिक्षकों को यह एहसास नहीं था कि वे भाषा सीख रहे हैं या यह इतिहास-भूगोल का कोई विषय है। हम सब पूरी तरह अकाल की कहानियों में डूबे हुए थे। यह एक खोज यात्रा थी, न कि कोई प्रोजेक्ट जिसे हमें व बच्चों को पूरा करना था।

विषय आधारित शिक्षण पद्धति

शिक्षकों द्वारा कई विषयों पर फाइलें बनवाई गई थीं, जिनमें उस विषय के पाठ्यपुस्तक के पाठ एवं उनसे सम्बन्धित *चकमक* और *संदर्भ* के लेख ढूँढकर फोटोकॉपी कर एक जगह रखे गए थे। लाइब्रेरी से उस विषय की किताबों की सूची बनाकर भी रखी गई थी। इसका उद्देश्य यह था कि जब किसी विषय पर चर्चा हो तो शिक्षक को सारी सम्बन्धित जानकारी एक जगह मिल जाए। इससे यह भी फायदा हुआ कि बच्चे पाठ्यपुस्तकों के पाठ भी पढ़ते रहते थे, भले ही उस क्रम में नहीं, इसलिए उनकी यह चिन्ता भी कम हो जाती थी कि वे पाठ्यपुस्तक नहीं पढ़ रहे हैं।

नदी विषय के लिए एक्टिविटी कार्ड बनाए गए, जिन्हें एक गत्ते के डिब्बे में रखा जाता था। प्रत्येक कार्ड पर एक गतिविधि लिखी रहती थी। क्लास के समय कोई बच्चा ऑफिस से यह डिब्बा उठाकर ले आता था और बच्चे अपनी मर्ज़ी से किसी भी गतिविधि का कार्ड निकालकर, गतिविधि करने में जुट जाते थे। इस तरह उन्हें खुद तय करने का मौका

मिलता था कि उस विषय में क्या करना है, कैसे आगे बढ़ना है। सभी बच्चे सारी गतिविधियाँ नहीं कर पाते थे, और समय सीमा तक जितना अच्छे से हो पाता था, उतना ही किया जाता था। अन्य ज़रूरी बातें शिक्षक सबको बता देते थे।

इस तरीके को प्रोजेक्ट अप्रोच भी कहा जाता है, जिसमें किसी विषय को चुनकर, उस पर विस्तृत बातचीत की जाती है। लेकिन हमने अक्सर पाया कि जैसे ही प्रोजेक्ट वर्क को पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया जाता है, उसका व्यवसायीकरण हो जाता है और उसका असली मर्म खो जाता है। इसलिए जब हम यह तरीका शिक्षक प्रशिक्षण में समझाते थे, तो कहते थे कि जैसे स्कूल में विषयों को उनके दायरे के हिसाब से बाँटा जाता है, वैसा जीवन में नहीं होता। उदाहरण के लिए, पानी - भूगोल में हम बारिश के बारे में पढ़ते हैं, हिन्दी, अँग्रेज़ी या अन्य भाषा की कक्षा में पानी पर कविता पढ़ते हैं, गणित में पानी का मापन, एवं घनत्व सीखते हैं, और केमिस्ट्री में पानी हाइड्रोजन व ऑक्सीजन से बना है, यह समझते हैं। एक ही विषय कई हिस्सों में बाँट दिया जाता है। लेकिन वैज्ञानिक या विशेषज्ञ किसी विषय पर सोचते समय उसे समग्र रूप से देखते हैं। बारिश के मौसम के अनुभव से ही बारिश की कविता भी जन्म लेती है। असल में, इस पद्धति की खासियत यही है कि किसी भी विषय के सभी पहलुओं को समग्र रूप से देखा जाता है।

बहुत बार ऐसे विषय या बातें दस-पन्द्रह दिन तक चलती रहती थीं, और बच्चे उनसे सम्बन्धित अलग-अलग काम करते रहते थे। लेकिन कुछ समय बाद हमें यह महसूस हुआ कि इस तरीके के लिए हर 40-45 मिनट में किसी अलग विषय को पढ़ाने वाला टाइमटेबल उपयुक्त नहीं है, क्योंकि इससे बच्चों के सोचने का क्रम टूट जाता है।

मेहमानों से बातचीत

ऐसे कई अवसर आते थे, जब कक्षा में किसी भी विषय पर स्वाभाविक रूप से चर्चा या गतिविधि शुरू हो जाती थी। उदाहरण के लिए,

जब बाहर से स्कूल देखने के लिए मेहमान आते थे, तो वे अक्सर अलग-अलग राज्यों से होते थे। उन्हें विभिन्न कक्षाओं में जाकर अपने राज्य के बारे में बताने के लिए आमंत्रित किया जाता था। इस दौरान बच्चे नक्शे में उनके राज्य को खोजते थे और बातचीत प्रायः साक्षात्कार के रूप में होती थी, जिसमें बच्चे प्रश्न पूछते और मेहमान उनके उत्तर देते थे।

इस प्रक्रिया के अन्त में, बच्चे उनकी भाषा में अपना नाम लिखना और उस भाषा का एक गीत सीखते थे। इसी का परिणाम था कि एक वार्षिक उत्सव में बच्चों ने पाँच-छह भाषाओं में गीत प्रस्तुत किए, जिनमें आँध्र की कुई भाषा के साथ-साथ उड़िया और मराठी के गीत भी शामिल थे।

इसके अतिरिक्त, अखबारों और लाइब्रेरी के माध्यम से भी बच्चों को विभिन्न राज्यों और शहरों के बारे में जानकारी मिलती रहती थी। लाइब्रेरी में उपलब्ध लोककथाएँ बच्चे बड़े उत्साह से पढ़ते थे। इस तरह, अलग-अलग राज्यों के लोगों से प्रत्यक्ष रूप से मिलकर बच्चों को उन सन्दर्भों का ठोस अनुभव मिलता था, जिन्हें वे पहले केवल अमूर्त रूप में जानते थे।

हमारे इलाके में साल में एक बार राजस्थान से भेड़ पालक समुदाय के लोग हज़ारों जानवरों के साथ चारे की तलाश में आते थे। कई बार वे हमारे खेत के आसपास ही डेरा डालते थे। उस समय पूरा स्कूल अपना काम छोड़कर, उन्हें देखने दौड़ पड़ता था। एक बार हमने बच्चों को उनसे जानकारी लेने के लिए कॉपियाँ देकर भेजा। बच्चे बड़े उत्साह से गए, लेकिन भेड़ पालक ने यह समझकर कि बच्चे क्लास छोड़कर आए हैं, उन्हें डाँटकर वापस भेज दिया और कहा, “जाओ, पढ़ो। कैसा स्कूल है जो बच्चों का समय बर्बाद कर रहा है।” उनके अनुसार वे बच्चों का भला ही सोच रहे थे।

फिर भी, उनके माध्यम से बच्चों के मन में राजस्थान की एक ठोस छवि उभरी। साथ ही, एक सवाल भी उठा कि जब

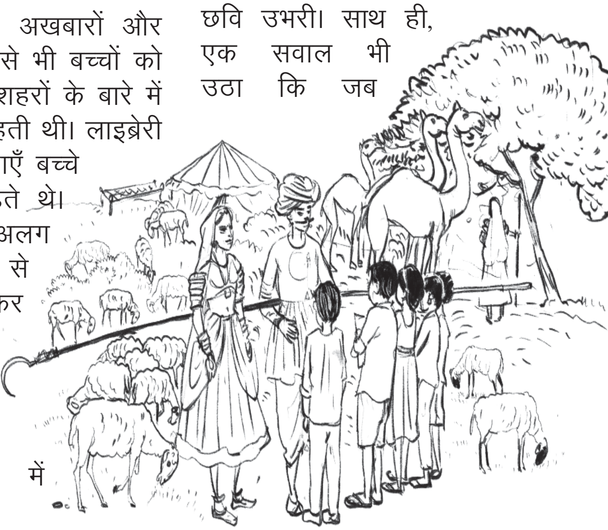

राजस्थान में चारा कम है, तो वहाँ इतनी सारी भेड़ कैसे पलती हैं और लोग उन्हें क्यों पालते हैं? यह बहुत जायज़ सवाल था, जो हमारे मन में भी पहले कभी नहीं आया था और न ही पाठ्यपुस्तकों में इसका उल्लेख था। बाद में पता चला कि इसके पीछे एक महत्वपूर्ण कारण है – राजस्थान में कम वर्षा और सूखी ज़मीन के कारण भेड़ों को खुर की वह घातक बीमारी नहीं होती, जो कीचड़ वाले इलाकों में आम तौर पर पाई जाती है।

खेल-खेल में उभरता समग्र शिक्षण

एक बार एक नया लड़का इधर-उधर से लकड़ियाँ इकट्ठी करके स्कूल के बीचों-बीच एक झोंपड़ी बनाने लगा। बच्चों को इस तरह की रचनात्मक गतिविधियाँ करते देख हम हमेशा बहुत उत्साहित हो जाते थे। लेकिन वह नया था, किसी ने उसे डरा दिया। जब मैं उसकी झोंपड़ी देखने के लिए उसके पास जा रहा था, तो वह वहाँ से भाग गया। सज़ा के डर से वह बहुत देर तक बुलाने पर भी वापस नहीं आया। बच्चों के बहुत समझाने पर जब वह सामने आया, तो उसे विश्वास ही नहीं हुआ कि इस काम के लिए उसे शाबाशी मिल रही है। उसे झोंपड़ी बनाते रहने के लिए कहा गया, बस जगह बदलने की सलाह दी गई। फिर क्या था, जैसे ही यह बात पूरे स्कूल में फैली, कई और बच्चे भी झोंपड़ियाँ बनाने में लग गए। देखते ही देखते, बच्चों की चार-पाँच टोलियाँ बन गईं और सभी इस काम में जुट गए। वे सुबह से ही पूरे उत्साह के साथ इसमें मग्न हो जाते थे।

हमने शिक्षकों से भी कहा कि बच्चों को बिना रोकटोक यह करने दें, देखते हैं आगे क्या होता है। धीरे-धीरे यह एक पूरे गाँव के बसने जैसी कहानी बन गई। कभी ईर्ष्या में कोई किसी की झोंपड़ी तोड़ देता, तो कभी झगड़े होते। फिर उन झगड़ों को सुलझाने के लिए पंचायत, पड़ोसी और आपसी मदद जैसे कई सामाजिक पहलू सामने आने लगे। आठवीं कक्षा के बच्चों ने तो लगभग 6 फीट x 8 फीट की एक ऊँची झोंपड़ी बना दी, जिसमें बैठकर वे पढ़ाई भी करते थे।

एक दिन हमने देखा कि बच्चे अपनी झोंपड़ियों में मौजूद नहीं थे, बल्कि हॉल में बैठे हुए थे। पता चला कि एक कर्मठ शिक्षक ने सभी बच्चों को वहाँ भेज दिया था। उन्हें लगा कि यह सब क्या मज़ाक चल रहा है – एक सप्ताह हो गया इस बेहूदी गतिविधि को, और पढ़ाई का काम कब होगा!

इसके बाद शिक्षकों के साथ एक बैठक की गई, जिसमें उन्हें समझाया गया कि बच्चों का अपनी इच्छा से किसी कार्य में तल्लीन होना, एक अत्यन्त सकारात्मक पहलू है। क्यों न उन्हें वहीं, झोंपड़ियों में रहकर पढ़ने दिया जाए? जो काम वर्कशीट्स के माध्यम से हो रहा था, उसे वे झोंपड़ियों में भी कर सकते हैं।

यह विचार बच्चों को भी पसन्द आया और उन्होंने शिक्षकों के लिए भी एक झोंपड़ी बना दी। अब रोज़ सुबह शिक्षक वहीं जाकर बच्चों को गणित की वर्कशीट देते, और बच्चे वहीं बैठकर उसे पूरा कर जाँच करवाते थे। अँग्रेज़ी की हमारी 'आपी-आपी' वाली पुस्तकों से भी बच्चे स्वाध्याय करते रहते थे। इसके अलावा, झोंपड़ियों से जुड़े कई रोचक प्रश्न भी तैयार किए गए, जैसे – किन पेड़ों की लकड़ियाँ घर बनाने में उपयोग होती हैं, गाँव किसने बसाए होंगे, घर की लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई कैसे मापी जाए, क्षेत्रफल कैसे निकाला जाए आदि।

जिज्ञासा से शोध तक

एक दिन अखबार पढ़ते हुए एक खबर सामने आई कि मध्य प्रदेश के लगभग 55 प्रतिशत बच्चे कुपोषित हैं। जब बच्चों को कुपोषण का अर्थ समझाया गया, तो कुछ को यह खबर गलत लगी। वे इस शब्द से परिचित थे, क्योंकि पाँचवीं कक्षा में 'हीनता जनित रोग' नामक पाठ को हमने विस्तार से पढ़ाया था। इसके अलावा, यहाँ एक संस्था के सहयोग से 'स्वास्थ्य साथी' कार्यक्रम भी चलता था, जिसमें बच्चों को सामान्य बीमारियों और उनके उपचार की जानकारी दी जाती थी।

बच्चों का मानना था कि भूख और पर्याप्त भोजन न मिलना गरीबी से जुड़े हैं, जबकि उनके आसपास के क्षेत्र में लोगों के पास मोटरसाइकिलें, ट्रैक्टर और ट्यूबवेल जैसी सुविधाएँ

उपलब्ध थीं, इसलिए उन्हें कोई खास गरीबी दिखाई नहीं देती थी। बच्चों ने स्वयं भूख का अनुभव भी नहीं किया था, इसलिए उनके लिए यह तथ्य स्वीकार करना कठिन था।

उसी समय हमारे साथ एक आयुर्वेदिक डॉक्टर भी काम कर रहे थे। बच्चों की शंका को देखते हुए यह तय किया गया कि क्यों न इसकी सच्चाई का पता लगाया जाए। डॉक्टर साहब ने कक्षा को समझाया कि कुपोषण क्या होता है और इसकी पहचान कैसे की जाती है। आसपास की आंगनवाड़ियों से वज़न मापने की मशीनें मँगाई गईं और बच्चों की टोलियाँ बनाकर पास के गाँवों में जाँच करने का कार्यक्रम तैयार किया गया। तीन गाँवों के लगभग 250 से 300 बच्चों के वज़न और अन्य लक्षणों की जाँच करने पर पता चला कि वास्तव में कुपोषण की स्थिति लगभग वैसी ही थी, जैसी खबर में बताई गई थी। यह जानकर बच्चों को बहुत आश्चर्य हुआ।

इसके बाद यह चर्चा आगे बढ़ी कि जो इलाका ऊपर से समृद्ध दिखाई देता है, वहाँ कुपोषण क्यों है। इस प्रश्न के उत्तर खोजने के लिए शिक्षकों और बच्चों के साथ मिलकर कई सवाल तैयार किए गए, जैसे घर में रोज़ क्या खाया जाता है, क्या दाल उपलब्ध है, भोजन की विविधता कैसी है आदि।

बच्चों ने टोलियाँ बनाकर आसपास के गाँवों का दौरा किया और छुट्टियों में अपने घर जाकर भी इन सवालों

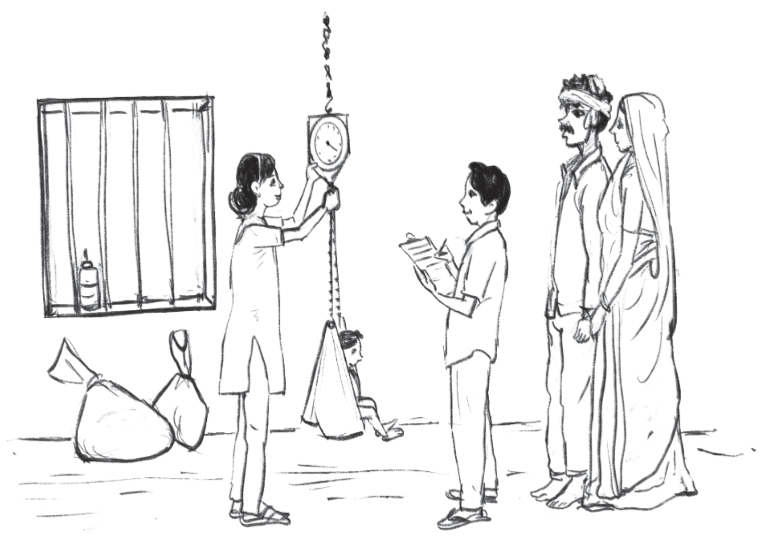

के जवाब जुटाए। एक सर्वे फॉर्म तैयार किया गया, जिसके माध्यम से घर-घर जाकर जानकारी एकत्र की गई, जैसे परिवार में सदस्यों की संख्या, भोजन की उपलब्धता, उगाई जाने वाली फसलें आदि। इसके साथ ही बच्चों ने कई बुज़ुर्गों से बातचीत कर पुराने समय की खानपान की आदतों और जीवनशैली के बारे में भी जाना।

इस पूरी प्रक्रिया में बहुत सारी महत्वपूर्ण जानकारियाँ सामने आईं, जिन पर कक्षा में लगातार चर्चा होती रही। अन्ततः बच्चों को समझ आया कि कुपोषण के कई कारण हैं। प्रमुख रूप से, बाज़ार पर बढ़ती निर्भरता के कारण खेती में नगदी फसलों का चलन बढ़ा है, और खेतों व जंगलों में जैव विविधता कम हो गई है। इसका सीधा असर भोजन की मात्रा और विविधता, दोनों पर पड़ा है। जहाँ पहले लोग लगभग 135 प्रकार के खाद्य पदार्थों का सेवन करते थे, वहीं अब यह संख्या घटकर केवल 25-30 रह गई है। साथ ही, जंगल, नदी और गैर-फसली स्रोतों से मिलने वाले भोजन का हिस्सा भी बहुत कम हो गया है, जिससे खेतों पर निर्भरता बढ़ गई है। खुशी की बात यह रही कि बच्चों द्वारा किए गए इस अध्ययन के निष्कर्ष अन्तरराष्ट्रीय खाद्य और कृषि संस्थानों के शोध से भी मेल खा रहे थे।

बच्चों द्वारा किए गए इस शोध को राष्ट्रीय बाल विज्ञान काँग्रेस में डॉ. अब्दुल कलाम द्वारा प्रथम पुरस्कार दिया गया। चयन समिति ने प्रश्न उठाया कि "डॉ. कलाम बायोडीज़ल उत्पादन के लिए तेलीय फसलों की खेती की बात करते हैं, जबकि आप नकदी फसलों का विरोध कर रहे हैं।" बच्चों का उत्तर सुनकर समिति के वरिष्ठ सदस्य भी आश्चर्यचकित रह गए, "खेती हम करते हैं और हमारे बच्चे भूखे हैं, लेकिन डॉ. कलाम को इस वास्तविकता का पता नहीं है। हमारी शोध से यह बात सामने आई है।" समिति ने कभी नहीं सोचा था कि डॉ. कलाम जैसे महान व्यक्ति के विचारों का इस तरह तर्कसंगत विरोध किया जा सकता है।

यह थी किसी विषय को समझने और गहराई से सीखने की वास्तविक प्रक्रिया।

घूमते-फिरते सीखना

घूमने-फिरने के दौरान कई बार सीखने और संवाद के अनेकों सुन्दर और मज़ेदार अवसर मिलते हैं। बातचीत, सीखने-सिखाने का एक बेहतरीन तरीका है। रविवार को बच्चों के साथ सुबह-सुबह टहलने जाने पर अक्सर कई रोचक बातें सामने आती थीं। बच्चे उत्साह से कहते, "सर, आज चाँद और सूरज एकसाथ दिख रहे हैं!", "देखो-देखो, वह तोता है।" इस पर चर्चा होती कि तोते कई प्रकार के होते हैं। कोई कहता, "मुझे

तो केवल एक ही तरह का तोता पता था।" तब सबको कुछ नया सीखने को मिलता।

रास्ते में बच्चों ने पाट (नहर) देखकर कहा, "पहले जब बिजली और मोटरें नहीं थीं, तब लोगों ने खेतों में पानी लाने का कितना अच्छा तरीका निकाला था। अब पाट से पानी क्यों नहीं दिया जाता?" इसी तरह, नदी किनारे शमशान स्थल देखकर बच्चों के मन में प्रश्न उठे, "सबसे पहले यहाँ किसने जलाया होगा? बाद में गाँव की यह जगह जलाने के लिए कैसे उपयोग होने लगी?" फिर चर्चा के दौरान हमने बताया कि कुछ लोग शवों को जलाते नहीं, बल्कि दफनाते हैं। एक बच्चे ने कहा, "हमारे यहाँ छोटे बच्चों को जलाते नहीं, गाड़ देते हैं और ऊपर पत्थर रख देते हैं, ताकि जानवर उन्हें नुकसान न पहुँचाएँ।"

ऐसी सैकड़ों बातें बातचीत में निकलती थीं। एक बार सैर के दौरान बच्चों को चमकीले पत्थर मिले। वे तरह-तरह के पत्थर ले आए। स्कूल पहुँचते ही हमने लाइब्रेरी से एक *एनसाइक्लोपीडिया* निकाला और चित्रों के आधार पर पत्थरों को पहचानने की कोशिश की। उसी समय कुछ बच्चों की खाना बनाने की बारी थी, लेकिन वे पत्थरों में इतने मग्न हो गए कि न जाने का बहाना मिल गया। बाद में उन्हें डाँट भी पड़ी।

साल में एक बार कहीं दूर घूमने जाने का कार्यक्रम अवश्य होता था। यह आसपास की पैदल यात्राओं से अलग होता था। छोटे बच्चों को पास के गाँवों के तालाबों और नर्सरी में ले जाया जाता था, जहाँ वे साथ बैठकर खेलते-कूदते खाना खाते और बहुत खुश होकर लौटते थे। उनके लिए जीप में बैठना ही अपने आप में एक रोमांचक अनुभव होता था।

थोड़े बड़े बच्चों को बड़वानी ज़िले के दर्शनीय स्थलों के साथ-साथ ज़िला कार्यालय, पुलिस कार्यालय आदि दिखाने ले जाते थे। इनमें स्वतंत्रता सेनानी भीमा नायक का बंगला और कचहरी उनके लिए विशेष रूप से रोचक स्थान होते थे। इसके साथ ही, वे कुछ स्वयंसेवी संस्थाओं के कार्यों को भी समझते थे। यात्रा के अन्त में सभी नर्मदा नदी में मस्ती करते हुए लौटते थे।

बड़े समूह के बच्चों को डांडी में समुद्र दिखाने ले जाया जाता था। वहाँ वे वेड़छी के 'सम्पूर्ण क्रान्ति विद्यालय' में रुकते थे, जहाँ उन्हें सामाजिक और शैक्षिक गतिविधियों के बारे में जानने का अवसर मिलता था। वहाँ वे अणु-मुक्ति जैसे विषयों पर जानकारी प्राप्त करते, सुबह नायारण भाई देसाई से गाँधी-कथा सुनते, आसपास के आदिवासी गाँवों का भ्रमण करते, और सूरत में बन्दरगाह तथा सुमुल डेयरी जैसी जगहें भी देखते थे।

समुदाय की सहभागिता

बच्चे हर साल बुज़ुर्गों को बुलाकर या उनके पास जाकर खेती, पशुपालन, जंगल, जड़ी-बूटियों, स्वतंत्रता आन्दोलन, लोककथाओं और गाँव के इतिहास के बारे में जानकारी जुटाते थे। फिर इस जानकारी और लोककथाओं के आधार पर किताब बनाना भी एक महत्वपूर्ण गतिविधि होती थी।

एक बार स्कूल का हैंडपम्प खराब हो गया। कई बार आवेदन करने के बावजूद जब कोई कार्यवाही नहीं हुई, तो जयश्री सभी बच्चों को पीएचसी कार्यालय ले गईं। परिणाम यह हुआ कि अगले ही दिन पाइप और अन्य सामग्री पहुँच गई। इस तरह बच्चों ने समस्या समाधान की प्रक्रिया को भी जाना और समझा।

अपने आसपास के पहाड़, नदी, गाँव या स्कूल की ज़मीन का इतिहास खोजना – ऐसे अनेक कार्य हुए, जो रोज़मर्रा के अनुभवों से शुरू होकर एक सशक्त शैक्षणिक प्रक्रिया का रूप ले लेते थे। शुरुआती वर्षों में हम बच्चों को पाँचवीं और आठवीं की प्राइवेट परीक्षा दिलवाते थे, लेकिन बाकी की कक्षाओं में बच्चों पर केवल पाठ्यपुस्तकों तक सीमित रहने की मजबूरी नहीं थी; सीखने के लिए हमारे पास पर्याप्त समय और स्वतंत्रता थी।

* * *

बहुत-से उदाहरण हो चुके।

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि हमारे आसपास सीखने के हज़ारों विषय मौजूद हैं, रोज़मर्रा वाली प्रत्येक घटना में सीखने के अवसर छिपे होते हैं। इन्हें पहचानना, पकड़ना और आगे बढ़ाना शिक्षक तथा शिक्षण संस्थानों की ज़िम्मेदारी है। यह आदत हमें पूरी ज़िन्दगी के लिए एक जिज्ञासु विद्यार्थी बना सकती है।

कुछ लोग यह मान सकते हैं कि जहाँ कोई रहता है, उस जगह के

बारे में वह स्वयं ही सब जान जाता है, लेकिन यह बिलकुल सही नहीं है। अक्सर ऐसा पाया जाता है कि एक ही स्थान पर पूरी ज़िन्दगी बिताने के बावजूद लोगों को वहाँ का इतिहास और अनेक महत्वपूर्ण बातें पता नहीं होतीं। उदाहरण के लिए, हम बारिश का आनन्द तो लेते हैं, लेकिन यह जानने की कोशिश नहीं करते कि वह अरब सागर से आई है या बंगाल की खाड़ी से।

अनुभव तो हमें रोज़ होते हैं, लेकिन उन्हें समझने की बौद्धिक प्रक्रिया तभी विकसित होती है जब हम उन पर सचेत रूप से मनन करते हैं। अनुभव का महत्व इस बात में है कि उसमें भावनाएँ भी जुड़ी होती हैं, जो किसी भी घटना को गहराई और जीवन्तता प्रदान करती हैं। उदाहरण के लिए, बारिश से मिलने वाले आनन्द को केवल उसके रासायनिक सूत्र से समझकर महसूस नहीं किया जा सकता। इसलिए सीखने में अनुभवों का आधार अत्यन्त आवश्यक है।

हालाँकि, हम विभिन्न परिस्थितियों का अनुभव करते हैं, लेकिन उनके साथ सचेत रूप से जुड़ना, मात्र यूँ ही उनसे गुज़र जाने से बिलकुल भिन्न होता है। सचेत जुड़ाव में मस्तिष्क की सक्रियता अधिक होती है, फिर भी हमने हमेशा भावनात्मक और प्रत्यक्ष अनुभव को समान रूप से महत्वपूर्ण माना है।

लेकिन स्कूल के वातावरण में इनका प्रायः कोई स्थान नहीं होता। ऐसे में इन अनुभवों को जीवित बनाए रखना और साथ ही उन पर निरन्तर विचार करते रहना, एक गम्भीर चुनौती है।

साथ ही, इस पद्धति को शिक्षकों तक पहुँचाना, उन्हें इस बारे में समझाना, इस तरीके के अनुरूप मॉड्यूल, प्रश्नों के सेट और शिक्षण-सामग्री तैयार करना भी एक चुनौती है। ऐसी कुछ सामग्री दो दशकों के सतत व सघन काम के दौरान *आधारशिला* में विकसित की गई है, जिसे संकलित और व्यवस्थित करना अत्यन्त आवश्यक है।

अमित और जयश्री: लगभग तीन दशकों से पश्चिम मध्य प्रदेश में भील, भीलाला और बारेला आदिवासियों के बीच में रह रहे हैं। साथ ही, खेडुत मज़दूर चेतना संगठ, नर्मदा बचाओ आन्दोलन व पश्चिम भारत प्रवासी मज़दूर संघ के साथ-साथ आदिवासियों के अन्य संघर्षों के साथ भी खड़े हैं। 1998 से आदिवासी बच्चों व युवाओं की शिक्षा के लिए काम कर रहे हैं।

सभी चित्र: नीलेश गेहलोत: धार के फाइन आर्ट कॉलेज से मास्टर ऑफ फाइन आर्ट की उपाधि प्राप्त तथा रियाज़ एकेडमी ऑफ इलस्ट्रेशन, *एकलव्य* से डिप्लोमा। बचपन से ही चित्र बनाना बेहद पसन्द रहा है, और इसी रुचि ने इन्हें कला के क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया।

पाँच दिन, चार रातें
शाहपुर विज़िट

अनिल सिंह

एकलव्य से सम्बद्ध हमारे एक पुराने साथी हैं, अनूप कुमार। घुमक्कड़ी फितरत के व्यक्ति हैं। कारपेंटरी, कबाड़-से-जुगाड़ और विज्ञान के छोटे व कम लागत वाले खिलौने और उपकरण तैयार करने में उनकी महारत है। मध्यप्रदेश के बैतूल ज़िले की शाहपुर तहसील के एक गाँव में उनके कुछ मित्रों ने काफी साल पहले थोड़ी ज़मीन ली थी। वे उस पर जैविक खेती करते हैं। वहीं फार्म हाउस बनाया हुआ है जहाँ वे अकेले रहते हैं। कुछ गाय, बकरियाँ, मुर्गियाँ और एक कुतिया पाल रखी है। खाना खुद पकाते हैं। खेती-किसानी में मदद के लिए एक स्थानीय व्यक्ति को साथ में जोड़ा हुआ है। ज़रूरत पड़ने पर वह व्यक्ति ही अन्य कामगारों का इन्तज़ाम कर देता है। वहाँ एक कुआँ भी है और आसपास सब्ज़ी, केले, पपीते, अमरूद, आम, बाँस आदि के ढेरों पेड़ लगा रखे हैं।*

एक बार हमने बच्चों को भ्रमण के लिए भोपाल से बाहर, शाहपुर ले

* *साथ ही, अनूप जैविक खेती के खूब सारे प्रयोग भी करते रहते हैं।*

जाने का तय किया। सोच यह थी कि बच्चे शहर की दुनिया से हटकर, गाँव-देहात की ज़िन्दगी का तजुर्बा हासिल कर पाएँ। बिना पंखे-कूलर के प्राकृतिक वातावरण में रह सकें। खुद से खाना पकाएँ, पानी भरकर लाएँ, अस्थायी बाथरूम में नहाएँ और शौच के लिए खुली जगह पर जाना भी चुन सकें। नदी में नहाएँ और पेड़ व पहाड़ी पर चढ़ें। कुल मिलाकर, यह उनके लिए कुछ अलग सीखने का एक अच्छा मौका बन सके।

फार्म हाउस की यात्रा

इस सिलसिले में मई के महीने में हमने बच्चों के साथ अनूप के खेत पर जाने की योजना बनाई। इसके लिए आठ साल से बड़े बच्चों को ही चुना गया क्योंकि छोटे बच्चों के लिए घर और माँ-बाप को छोड़कर, चार-पाँच दिनों के लिए बाहर जाना काफी मुश्किल होता।

आनन्द निकेतन के 15 और *मुस्कान* संस्था के 10 बच्चों के साथ हम 6 बड़े लोग मई की एक अलसुबह ट्रेन से इटारसी के लिए रवाना हुए। इटारसी स्टेशन पर उतरकर हम सबने चाय पी और पोहे का नाश्ता किया। फिर दो बड़ी तूफान जीपों में भरकर हम वहाँ से शाहपुर के लिए चल पड़े। उगता हुआ सूरज बहुत-से बच्चों ने उस दिन पहली बार देखा था।

दो-ढाई घण्टों में हम शाहपुर पहुँच गए। अनूप हमें सड़क के एक जोड़ तक लेने आ गए थे, वहाँ से हम सब अपना-अपना बैग लेकर पैदल ही खेत तक पहुँचे। खेतों के बीच से होती हुई पगडण्डी एक खुली जगह पर पहुँची। अनूप ने बताया कि यहाँ से उनकी ज़मीन शुरू होती है। अनूप की आवाज़ सुनकर एक बड़ा-सा काला-भूरा कुत्ता भौंकता और दौड़ता हुआ आ पहुँचा। अनूप ने दूर से ही उसे आवाज़ लगाई, "टिफी...टिफी...।" नज़दीक पहुँचकर उसने साथ चल रहे बच्चों को सूँघा। कई बच्चे डरकर चिल्लाने लगे। अनूप ने झुककर टिफी को गले से पकड़ा और उसे थोड़ा दुलार किया। अनूप ने बताया, "यह टिफी है, कुछ नहीं करेगी।" टिफी सचमुच अनूप के पीछे-पीछे अपनी पूँछ हिलाते हुए चलने लगी। कुछ दूर चलने के बाद उसने अपना रास्ता बदला और एक अलग पगडण्डी पर चलते हुए स्टोर रूम जैसे बने शेड के अन्दर घुस गई।

अनूप ने बताया, "टिफी ने छह बच्चे दिए हैं। अभी वे बहुत छोटे हैं इसलिए टिफी उन्हें लेकर बहुत सतर्क रहती है। किसी भी आने-जाने वाले को स्टोर रूम के पास फटकने भी नहीं देती। अगर कोई आसपास से भी गुज़रे तो उसकी तरफ देखकर गुर्राने लगती है और झपट्टा मारकर दौड़ा भी सकती है। आम तौर पर कुतिया ऐसे समय बहुत आक्रामक होती है। जब तक तुम लोग यहाँ हो,

ध्यान रखना कि कोई भी स्टोर रूम के पास न जाए और न उसके पिल्लों को देखने की जुर्रत करे। टिफी खुद ही एक दिन बाद दोस्ताना बर्ताव करने लगेगी और तुम लोगों के पास आकर मिलेगी। यहीं तुम लोगों के साथ खेलेगी। उसे भी लोगों के बीच रहना अच्छा लगता है। हाँ, लेकिन अपने पिल्लों को हाथ भी न लगाने देगी इसलिए उसकी तो कोशिश भी मत करना।"

मिल-जुलकर काम बाँटना

आसपास दूर-दूर तक खेत फैले हुए थे। रहने के लिए एक छोटा हॉल, दो कमरे और एक किचन था। एक किनारे दो शौचालय बने हुए थे। एक टंकी में पानी था जिसपर नल लगा हुआ था। थोड़ी दूर ही एक कुआँ था जिसपर जाली लगी हुई थी। आम के एक पेड़ पर दो झूले बाँधे गए थे।

यहाँ तक पहुँचने में दोपहर के 12 बज गए थे। हाथ-पैर धोकर हम सब करंज के पेड़ के नीचे इकट्ठे हुए। पेड़ घना था, उसकी छाँव भी घनी और दूर तक फैली हुई थी। पेड़ के नीचे अनूप ने पहले से ही रेत बिछा रखी थी जिसपर पानी सींचकर ठण्डक की गई थी और फिर उसपर दरियाँ बिछाई गई थीं। सबसे पहले अनूप ने हम सबके लिए नींबू पानी का इन्तज़ाम किया। अर्णव जो यहाँ आते ही घर जाने के लिए रुआँसा हो रहा था, उसे सबके लिए एनर्जी ड्रिंक बनाने की ज़िम्मेदारी सौंपी गई। उसकी बहन अनुष्का ने बताया था कि उसे इस काम में बड़ा मज़ा आता है। अर्णव सब भूलकर, अबीर के साथ नींबू पानी बनाने के काम में लग गया। सबको काफी भूख लगी थी इसलिए हम सबने अपने साथ लाया हुआ खाना खोला और बेसब्री से दोपहर का खाना खाने में जुट गए।

खाने के बाद सबने थोड़ा आराम किया। अब बारी थी इन पाँच दिनों की योजना बनाने की। सबके बीच कामों की ज़िम्मेदारी बाँटी गई जैसे खाना क्या बनेगा और उसकी तैयारी के लिए चार-चार लोगों की एक टीम होगी जो हर रोज़ बदलेगी। तो सबसे

पहले चार दिनों के लिए अलग-अलग टीमें बन गईं। कुएँ और टंकी से पानी लाने, बाड़ी से टमाटर, मिर्च, सब्ज़ी, धनिया तोड़कर लाने और खाने की तैयारी में मदद करने के लिए भी एक टीम बनी। यह भी तय हुआ कि सभी लोग अपने-अपने खाने के बर्तनों को साफ करेंगे, और खाना पकाने वाले बर्तन साफ करने की ज़िम्मेदारी भी चार दिनों के लिए अलग-अलग टीमों को सौंप दी गई। दोपहर में ही रात के खाने की प्लानिंग भी हो गई। लगभग आधे लोग शाकाहारी थे और आधे माँसाहार पसन्द करने वाले थे।

प्रकृति के बीच एक यादगार शाम

हमारी बची हुई दोपहर पेड़ के नीचे गपशप करते हुए कट गई। शाम होते ही हम लोग नदी तक गए। नदी किनारे तरबूज़ लगे हुए थे। वहाँ से नदी पर बना हुआ रेलवे पुल भी दिखता था इसलिए हमने रेलगाड़ी को पुल पर से आते-जाते देखा। एक नज़र में पूरी गाड़ी देखना कमाल का अनुभव था।

हम तैयारी से गए थे। सबने अपनी ड्रॉइंग कॉपी, शीट और पेंसिल निकाली। सबसे कहा गया कि जिसको जो भी दृश्य बनाना हो, जहाँ बैठकर बनाना हो, बना सकता है। सबने अपना-अपना चित्र खींचा। किसी ने पानी में तैर रहे एक कीड़े को नज़दीक से देखकर बनाया, किसी ने बेलों के बीच छुपी तरबूज़ की जोड़ी बनाई, किसी ने नदी पर बने पुल का चित्र खींचा, तो किसी ने नदी किनारे बनी हुई झोपड़ी को अपनी ड्रॉइंग शीट पर उतार दिया।

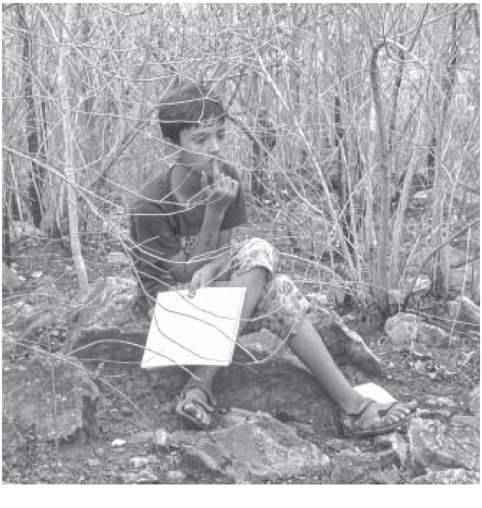

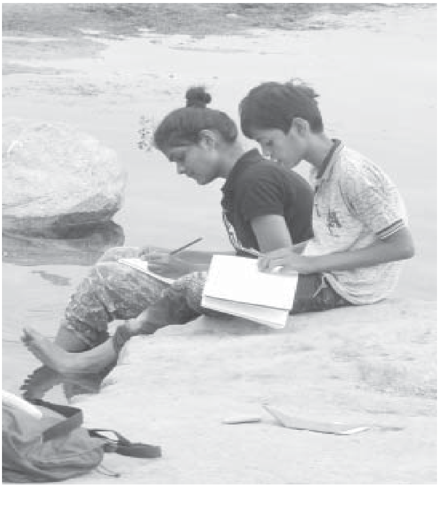

नदी के उस पार एक छोटी पहाड़ी थी। उस पर बने सँकरे रास्ते से मवेशी घर लौट रहे थे। पहाड़ी के पीछे सूरज ढल रहा था। सबने ढलते हुए सूरज को देखा और किसी-किसी ने उस दृश्य को भी अपनी ड्रॉइंग शीट पर उकेर दिया। शाम के हल्के धुँधलके में हम सब वापस लौट आए।

लौटकर आने के बाद अनूप ने हमें फुटबॉल में हवा भरकर दी। सबने उस खाली मैदान पर जमकर फुटबॉल का मज़ा लिया। इस बीच अनूप गाँव जाकर तीन मुर्गे ले आए। अपने फार्म हाउस सहायक कोण्डे की मदद से उन्होंने मुर्गों के माँस की सफाई की और खाना पकाने वाली टीम को बुलाकर मुर्गे को पकाने की विधि समझायी। माँस को मेरीनेट करके रख दिया गया। इस बीच भिण्डी काटी गई। साथ ही, प्याज़, लहसुन, टमाटर, अदरक, मिर्च और धनिया साफ करके काट लिए गए। इस काम में सब जुटे गए थे। पार्थ और गुणरत्न ने मिलकर आटा गूँथा। अनुष्का और सुषमा के साथ मिलकर रोटी बेलने और सेंकने की ड्यूटी आज उनकी थी। अंकित, अम्बर और अनीसा ने चावल और दाल धोकर पकने के लिए चढ़ाए। अनूप, मैंने और विजय ने मिलकर मुर्गा पकाया। इस बीच अर्णव ने सबके लिए एक बार फिर एनर्जी ड्रिंक बनाया। यह उसका पसन्दीदा काम बन गया था। रोहन, तमन्ना, देवेन्द्र और राजवीर ने मिलकर खाना परोसने की तैयारी की। थालियाँ, कटोरी, प्लेट और गिलास पानी से धोकर, पोंछकर एक तरफ रखे गए। इन लोगों ने मिलकर बाहर अहाते में चटाइयाँ बिछाकर, 25 लोगों के एकसाथ बैठकर खाने की व्यवस्था बनाई। पीने के लिए बाल्टी में पानी भरकर रखा।

इस तरह हम सबने रात के खाने में मुर्गा, भिण्डी, दाल-चावल, रोटी, सलाद और छाछ का मज़ा लिया। फिर सबने अपने-अपने बर्तन धोए, साथ ही, पकाने वाले बर्तन सबने उसी वक्त मिलकर साफ कर दिए। खाने के बाद हम सब बाहर टहलने निकले। आम में बौर पक गए थे और उनकी भीनी खुशबू जंगल में फैल रही थी। उस अँधेरे में चाँदनी रात का मज़ा ही कुछ और था।

वहीं अहाते में दरियाँ और गद्दे लगाए गए। कुछ गद्दे हॉल में भी लगाए गए। लोगों ने अपनी-अपनी पसन्द की जगह चुन ली। काफी देर तक किस्से-कहानियों और गीतों का दौर चला, फिर धीरे-धीर सब अपनी-अपनी जगह पर लुढ़कते गए।

रोमांच-मस्ती से भरा दूसरा दिन

दूसरे दिन की सुबह टिफी से हुई। सुबह के छह ही बजे थे और टिफी वहाँ हाजिरी देने के लिए आ गई थी। बिस्तरों पर से होते हुए उसने अहाते का एक चक्कर लगाया और भौंक-भौंककर सबको उठा दिया। अनूप

काफी सुबह उठते हैं। वे गाँव से दूध लाकर पहले ही रसोई में रख चुके थे। उन्होंने टिफी के लिए एक बड़े कटोरे में दूध निकालकर रखा और उसमें कॉर्न-फ्लेक्स डाल दिए। टिफी उसे फटाफट चट कर गई। वह इन्तज़ार कर रही थी कि सब बच्चे जल्दी-से उठ जाएँ तो वह उनके साथ खेले। धीरे-धीरे सब उठ गए। अपने ब्रश-मंजन लिए कुछ बच्चे खुले में, कोई पेड़ के नीचे, कोई बाथरूम में तो कोई कुर्सी पर ही बैठे हुए सुबह का मंज़र देख रहे थे। चाय बनाने वाली टीम ने सबके लिए चाय बनाई। अनूप ब्रेड, बटर और अण्डे लाकर रख चुके थे। कुछ बच्चे ऑमलेट बना रहे थे और उन्होंने पहली बार फ्राइंग पैन पर ऑमलेट को उछालकर पलटना सीखा, फिर सबने अपनी पसन्द का नाश्ता चुना – सैंडविच, ऑमलेट, बिस्किट, दूध और बासी रोटी में से जिसे जो भाया, उसने वह उठाया। सुबह साढ़े सात बजे तक सब तैयार थे। ज़्यादातर बच्चे टिफी के साथ मैदान में फुटबॉल खेल रहे थे। उन्हें रबर की एक छोटी गेंद भी मिल गई थी। बच्चे गेंद को फेंकते और टिफी उसे उठाकर लाती। बच्चों और टिफी के बीच खेल के बहाने अच्छी दोस्ती बन रही थी। कुछ बच्चे कुएँ से पानी खींच रहे थे तो कुछ नहाने की तैयारी में थे। दो पेड़ों के बीच रस्सियाँ बाँधी गई थीं ताकि लोग अपने कपड़े धोकर उन्हें धूप में सुखा सकें। करंज के पेड़ के नीचे की रेत जो कल फैल गई थी, उसे समेटने का काम चार लोगों ने मिलकर किया। दो लोग उस पर पानी सींचकर दरियाँ बिछा रहे थे। दोपहर यहीं जो काटनी थी।

आज अनूप ने पेड़ के नीचे स्टैण्ड पर एक व्हाइट बोर्ड भी रख दिया था। योजना के मुताबिक, आज कुछ मज़ेदार गणित की पहेलियाँ हल की जानी थीं। नौ बजे तक सारे बच्चे पेड़ के नीचे दरियों पर आकर जम चुके थे। अनूप, अंकित और विजय ने हम सबके सामने कई सारी गणित की पहेलियाँ रखीं। इन पहेलियों को बच्चों ने अपनी कॉपी में, रेत पर और कुछ ने व्हाइट बोर्ड पर हल करके देखा। फिर गाँव का एक व्यक्ति खेत से ताज़े तोड़े हुए तरबूज़ लेकर आ गया। दो बच्चों ने मिलकर उन्हें काटा और सबमें बाँटा।

दोपहर का खाना खाने के बाद करंज के पेड़ के नीचे गीत-संगीत की महफिल जमी। हम अपने साथ स्कूल से डफली लेकर गए थे। *मुस्कान* के बच्चों ने हमें कुछ नए गीत सिखाए। 'खाने को न रोटी देंगे किसन कन्हैया, जाम करो मिलकर शोषण का ये पहिया', 'कहब तो लग जाई धक से' आदि सबने साथ मिलकर गाए। इसके बाद बारी आई हमारे सबसे पॉपुलर गाने की। 'गाँव छोड़ब नाहीं, जंगल छोड़ब नाहीं; माय माटी छोड़ब नाहीं, लड़ाई छोड़ब नाहीं'। साथीपन, संघर्ष और आज़ादी की मुखर आवाज़ का जो एहसास यह गीत देता है, वैसा कोई दूसरा गीत नहीं।

तीन बजे के आसपास अनूप ने पास की पहाड़ी पर ट्रैकिंग पर चलने का प्रस्ताव रखा। सब फटाफट तैयार हो गए। पानी की बॉटल, जूते, टोपियाँ-चश्मे और डण्डे से लैस होकर हम पहाड़ी पर ट्रैकिंग के लिए रवाना हुए। पास की एक नदी के उथले हिस्से को पार कर हम दूसरे किनारे की पहाड़ी पर पहुँचे। पलाश और बबूल के पेड़ वाली उस पहाड़ी पर बाँस के झुरमुट और लेंटाना की झाड़ियों से जूझते-उलझते हम सबसे ऊपर पहुँच गए थे। वहाँ से पूरा गाँव हमें साफ दिख रहा था। पहाड़ी के सबसे ऊँचे टीले पर चढ़कर हमने पुल के ऊपर से जाती रेलगाड़ी फिर से देखी। लौटते हुए हमने साँप की बाम्बी देखी और उसके पास ही ताज़ी छोड़ी हुई केंचुली भी। अनूप ने बताया कि यह ब्लैक कोबरा की केंचुली है। एक भैंस का कंकाल भी देखा जो काफी पुराना था। इस तरह आज का दिन रोमांचक रहा। शाम को सात बजे तक हम अपने खेत वापस आ गए थे।

आज वर्षाजी ने किशोर लड़कियों के एक सवाल पर उनसे अलग से बातचीत करने का तय किया था, सो वे उनको अपने साथ लेकर बैठीं। बढ़ती उम्र की उलझनें, शरीर के बदलाव को लेकर बेचैनी, कुछ डर और अन्य कई भावनात्मक मसलों पर उन्होंने डेढ़ घण्टे तक लड़कियों से बातें कीं। वे अपने साथ कुछ किताबें लेकर गई थीं, जिनके ज़रिए भी उन्होंने अपनी बात समझाने की कोशिश की।

इस बीच कोण्डे ने अहाते के पास एक खम्भे पर हैलोजन लाइट लगा दी थी जिसकी रोशनी करंज के पेड़ के नीचे सहित पूरे मैदान पर फैल रही थी। झूले, कुआँ और करंज के नीचे की दोपहर वाली जगह आज रोशन थी। खाना खाने के बाद हम उस मैदान पर कबड्डी खेलने के लिए इकट्ठे हुए। क्या बड़े और क्या छोटे, सबने जमकर कबड्डी खेली। टिफी कुछ देर हमारे साथ-साथ ही यहाँ-वहाँ दौड़ती रही, फिर जब उसे यह खेल समझ में न आया तो एक जगह बैठकर देखने लगी। आज का दिन थकान भरा रहा। कुछ तो जल्दी ही बिस्तरों पर ढेर हो गए और कुछ चाँदनी रात का मज़ा लेते बैठे रहे। कुछ छोटे-छोटे समूह में गपशप में लगे रहे और कुछ अपनी डायरियाँ लिखने में व्यस्त थे।

माटी कला और पॉल्ट्री फार्म

अभी सुबह हुई भी न थी कि पानी की बूँदाबाँदी ने अफरा-तफरी मचा दी। सब हड़बड़ाकर उठ बैठे और अपने-अपने बिस्तर और दरियाँ समेटकर हॉल और कमरों में समा गए। कुछ को मारे गर्मी के नींद नहीं आई। कुछ बाहर निकलकर बूँदाबाँदी का मज़ा लेने लगे। रात के तीन बज रहे थे और पूरब की तरफ चाँद अपने पूरे शबाब पर था जैसे कि सूरज आज तीन बजे ही निकल आया हो! सुबह होने पर काफी देर तक सब रात के किस्से ही सुनते-सुनाते रहे। किसकी चादर, किसका तकिया – हड़बड़ी में सब गड्ड-मड्ड हो गया था।

नाश्ते में पोहा बनाया गया। दूध नहीं आया था तो सबने काली चाय पी। दोपहर के खाने के बाद हम सब शाहपुर में मौजूद माटी कला बोर्ड के कम्यूनिटी लर्निंग सेंटर को देखने गए। वहाँ एक बड़े-से हॉल में लगभग 40 पारम्परिक कुम्हारी कलाकार टेराकोटा आर्ट का प्रशिक्षण ले रहे थे और विभिन्न प्रकार के चाक पर बॉटल, कप, कुल्हड़, छोटे गमले, तवे और तरह-तरह के बर्तन बना रहे थे। बच्चों ने कलाकारों से बातचीत की। कुछ बच्चों ने चाक पर मिट्टी से कुछ-कुछ बनाकर भी देखा। हमने वहाँ सबके साथ बैठकर एक गीत भी गाया, फिर उनकी भट्टी देखने गए। दस फुट ऊँची ईंट और मिट्टी से बनी एक भट्टी थी जिसमें ये सारे बर्तन पकाए जाने थे। हमारे पुराने मित्र और केन्द्र के समन्वयक जीतेन्द्र प्रजापति ने बच्चों को इस पूरे काम के बारे में विस्तार से बताया।

इसके बाद हम वहाँ से कुछ दूर एक गाँव में पॉल्ट्री फार्म देखने गए। छोटे-छोटे चूज़ों से भरे उस जालीदार हॉल में चीं...चीं...चीं... का शोर किसी अनजान संगीत जैसा था। हमने चूज़ों और मुर्गियों के लिए बनाया गया फीडिंग सिस्टम देखा, साथ ही यह भी देखा कि अण्डों को कैसे स्टोर किया जाता है।

वहाँ से लौटकर हम सबको अपना-अपना अनुभव डायरी में लिखना था। जो लिख नहीं रहे थे, उन्हें बोलकर बताना था। शाम को लगभग डेढ़ घण्टे तक हमारा यह अनुभव सत्र चला। रात के खाने की तैयारी हो चुकी थी। आज सिर्फ पुलाव और रायता ही बनाया जाना था।

सीख, दोस्ती और डर का खेल

चौथे दिन सुबह नाश्ते के बाद हम नदी पर गए। अनूप ने रात में ही कोण्डे को बता दिया था कि आज बच्चों को लेकर नदी पर जाना है। दरअसल, कुछ लोगों ने नदी के किनारे महुआ की देसी शराब बनाने का संयंत्र लगा रखा था। अनूप का कहना था कि बच्चों को यह दिखाना चाहिए। कोण्डे हमें वहाँ लेकर गए। टिफी भी हमारे साथ-साथ नदी पर आई। वहाँ आसवन के लिए नदी किनारे ज़मीन पर एक देसी जुगाड़ बनाया गया था। मटकों में महुआ भरकर और उनका मुँह पत्तों से बाँधकर पानी में रखा गया था। महुआ को सड़ाकर, फिर भट्टी में उसे गरम कर, उसकी भाप को ठण्डे पानी से गुज़ारकर, आसवन विधि से देसी शराब बनाए जाने का यह संयंत्र था। कोण्डे ने उसकी पूरी प्रक्रिया समझायी। हालाँकि, यह अवैध था लेकिन दूर दराज़ के इलाकों में चोरी-छिपे यह काम होता ही है। हम सबके लिए यह बिलकुल ही नया अनुभव था।

लौटकर सब नहाने की तैयारी में

जुट गए। कई लोग बाथरूम में, कुछ खुले में तो कुछ पानी की टंकी के पास जाकर नहाने लगे। अंकित के साथ कुछ लोग नदी पर भी नहाने गए।

सब्ज़ी की बाड़ी के बीच एक छोटा कुण्ड था जहाँ नहाने की भी व्यवस्था थी। हमने देखा कि अर्णव टिफी को नहला रहा था। हमारे लिए यह हैरानी की बात थी कि अर्णव ने चुपके-चुपके टिफी से दोस्ती कर ली थी। अनूप का कहना था कि टिफी से कोई जल्दी दोस्ती नहीं कर पाता। अर्णव बहुत ही कॉन्फिडेंट है और उसे जानवरों के व्यवहार और स्वभाव की काफी समझ है। हालाँकि, अभी भी टिफी अपने पिल्लों को दिखाने में सहज नहीं थी। अनूप ने अर्णव से भी साफ बोल रखा था कि टिफी भले ही उसके साथ सहज है लेकिन टिफी के पिल्लों को देखने का खयाल वह अपने मन से निकाल दे। यह खतरनाक हो सकता है। अनूप ने बताया कि वे खुद भी उसके पिल्लों के पास जाने की हिम्मत नहीं करते।

दोपहर का खाना खाने के बाद करंज के पेड़ के नीचे मैंने व्हाइट बोर्ड पर आसवन की पूरी क्रियाविधि समझायी। पुराने समय में पारम्परिक रूप से फूलों के रस से आसवन विधि द्वारा इत्र बनाए जाने की बात भी हुई।

अंकित को कल से दस्त लग रहे थे। इसलिए सुबह से वह सिर्फ छाछ ही पी रहा था। इस पर बात हुई तो अनूप ने व्हाइट बोर्ड पर पाचन तंत्र का चित्र बनाया, और सबने विभिन्न

आन्तरिक अंगों के नाम बताए। फिर अनूप ने पाचन तंत्र की क्रिया प्रणाली समझायी। फायदेमन्द दोस्त बैक्टीरिया और नुकसानदायक बैक्टीरिया पर भी चर्चा हुई। टट्टी और पाद के बारे में भी विस्तार से बात हुई। इस बातचीत में सबको बहुत मज़ा आया। टिफी वहीं अर्णव के पास बैठी रही। शाम को हम सबने बाड़ी के बगल की खाली जगह पर पौधे लगाने के लिए गड्ढे खोदे। अनूप कुछ पौधे लेकर आए थे और कुछ हमें अलग-अलग जगहों से निकालकर, यहाँ कतार में लगाने थे। यह तय हुआ कि अभी गड्ढे खोद लिए जाएँ और सुबह सब लोग इनमें पौधे लगाएँगे।

रात का खाना खाने के बाद सब अपनी-अपनी रुचि के काम में लग गए। इस बीच हम दो-तीन लोगों ने मिलकर सबको डराने का प्लान बनाया। इसके लिए पार्थ और अंकित को साथ में ले लिया। हम पहले ही सबकी नज़र से बचकर कुएँ के पास वाली झाड़ी में एक मच्छरदानी छुपा आए थे। अब योजना के अनुसार, रात दस बजे के करीब मैं किसी बहाने से फार्म हाउस के पीछे वाले रास्ते से होकर, कुएँ के पास वाली झाड़ी में मच्छरदानी के पास पहुँच गया। अंकित ने सबको इकट्ठा किया और दूर इशारा करके दिखाया कि वहाँ झाड़ियों में सफेद-सा कुछ हिल रहा है। उसने कहा, “पहले मुझे लगा हवा से हिल रहा होगा लेकिन अब मुझे लगता है कि वहाँ कुछ तो गड़बड़ है।” अब डर का माहौल बन चुका था। बच्चे सिमटकर एक जगह इकट्ठे हो गए थे। पार्थ ने कहा, “मैं जाकर देखूँ क्या?” अंकित ने उसे मना कर दिया। बच्चों ने कहा, “अनूपजी को बुलाओ।” योजना के मुताबिक अंकित ने कहा कि वे किसी काम से आज इटारसी गए हैं, कल आएँगे। अब तक वह सफेद आकृति झाड़ियों में से थोड़ा बाहर आ चुकी

थी। डर गहराता जा रहा था। सब साँस बाँधे बैठे हुए थे। मैंने मच्छरदानी को लपेट रखा था और एक लम्बे बाँस से उसे इस तरह ऊपर उठाया हुआ था जिससे लगे कि कोई बहुत लम्बा व्यक्ति चल-फिर रहा है। आकृति और नज़दीक आ रही थी। अब तो कुछ बच्चों ने चीखना शुरू कर दिया। स्थिति की नज़ाकत को भाँपते हुए अंकित ने ही चिल्लाकर बताया कि ये तो अनिलजी हैं। मैं भी मच्छरदानी से निकलकर रोशनी में उनके सामने आ गया। तब जाकर बच्चों की जान में जान आई। फिर तो देर रात तक सब भूतों के ही किस्से सुनते-सुनाते रहे।

यात्रा का अन्तिम दिन

आज हमारी यात्रा का पाँचवाँ दिन था। दोपहर बाद वापस जाने की तैयारी भी करनी थी। सुबह चाय और ब्रेड-ऑमलेट के नाश्ते के बाद करंज के पेड़ तले संगीत सभा हुई। फिर हमने कल शाम खोदे गड्ढों में केले, आम, अमरूद और गुड़हल के पौधे लगाए। गड्ढों में मिट्टी भरी और पानी डाला। फिर सब नदी पर नहाने गए। कोण्डे हमें एक साफ-सुथरी और उथले पानी वाली जगह पर ले गए। सबने काफी देर तक नदी में मज़े किए। कुछ ने डुबकी लगाई तो कुछ किनारों पर ही नहाए। वहाँ से लौटकर हमने खाना बनाने की तैयारी की। आज पूड़ी और साग बनाया गया।

दोपहर का खाना हम करंज तले ही खाते थे। अर्णव को सब ढूँढ रहे थे क्योंकि कुछ देर से वह किसी को दिखा नहीं था। अचानक किसी की नज़र बाड़ी के उस पार स्टोर रूम के दरवाज़े पर गई; अर्णव दो पिल्लों को हाथ में लिए चला आ रहा था और टिफी उसके बगल में चल रही थी। हमारे लिए यह अत्यन्त आश्चर्यजनक नज़ारा था क्योंकि अनूप के अनुसार टिफी अभी अपने पिल्लों को किसी को देखने तक न देगी, छूना और उठाना तो दूर की बात है। लेकिन टिफी जिस तरह सामान्य ढंग से अर्णव के साथ चल रही थी, उससे तो यही लग रहा था कि उसने अर्णव को यह इजाज़त दे रखी थी। अर्णव काफी आगे तक आया। फिर एक जगह रुककर उसने हाथों में लिए हुए दोनों पिल्लों को ऊपर उठाकर हमें दिखाया और फिर पलटकर स्टोर रूम की ओर चल पड़ा। टिफी भी उसके साथ-साथ स्टोर रूम तक गई। अर्णव पिल्लों को लेकर अन्दर गया और अन्य तीन पिल्लों को बाहर लाकर, वहीं से हम लोगों को दिखाया और फिर वापस अन्दर रख आया। कुछ ही देर में अर्णव और टिफी दौड़ते हुए हमारी तरफ चले आ रहे थे। अर्णव ने बताया कि “स्टोर रूम में गद्दे के ऊपर छह पिल्ले हैं। तीन काले, दो भूरे और एक सफेद। मैं टिफी के साथ अन्दर गया था। उसने मुझे पिल्ले देखने दिए। मैंने धीरे-धीरे

उन्हें छुआ और फिर उन्हें हाथों में भी उठा लिया। टिफी ने कुछ नहीं बोला। वह मेरे साथ-साथ चली और देखती रही।"

खाना खाने के बाद हमने अपना सामान समेटा। रस्सियों पर सूख रहे कपड़े उठाए और फिर अपने-अपने बैग जमाए। दोपहर को दो बजे हम वापस जाने के लिए तैयार थे। एक तूफान जीप आई हुई थी। सबने उसमें अपने-अपने बैग रख दिए। कुछ बच्चे उसमें बैठ भी गए। बाकी सब पैदल ही सड़क तक चल पड़े। वहाँ से हमें बस पकड़नी थी। अनूप और टिफी हमें छोड़ने के लिए सड़क के जोड़ तक आए। थोड़ी ही देर में बस भी आ गई। रास्तेभर पलाश के फूल अपनी आखिरी शामों में हमें अलविदा कह रहे थे। देर शाम होते हम सब भोपाल में अपने-अपने घरों में पहुँच गए थे। पाँच दिन और चार रातों वाला शाहपुर का हमारा यह सफर बहुत ही रोचक और रोमांचक रहा।

अनिल सिंह: पिछले 25 वर्षों से सामाजिक क्षेत्र में सक्रिय हैं। विगत डेढ़ दशक से प्राथमिक शिक्षा उनका प्रमुख कार्य रहा है। भोपाल के आनंद निकेतन डेमोक्रैटिक स्कूल की संकल्पना के दिनों से वे जुड़े रहे और उसका संचालन किया। वर्तमान में, टाटा ट्रस्ट के पराग इनिशिएटिव से जुड़कर बाल साहित्य और पुस्तकालय संवर्धन का काम कर रहे हैं।

सभी फोटो: अनिल सिंह।

सामाजिक सुधारों का सिलसिला

प्रकाश कान्त

हर समाज के विकासक्रम में उसके तल में कुछ गाद और दीगर तलछट जमा होती रहती है। जड़ता भी आने लगती है। धर्म में भी! समय-समय पर होने वाले सामाजिक और धार्मिक सुधार के आन्दोलन इसी गाद-तलछट को हटाने, साफ करने और जड़ता को तोड़ने का काम करते हैं। भारतीय समाज में भी इस तरह के सुधारों का एक लम्बा सिलसिला मौजूद रहा है। मध्यकाल में यह सिलसिला तेज़ हुआ और ब्रिटिश काल में उसमें एक अलग तरह की धार आ गई। चाहे ब्रह्म समाज हो या आर्य समाज या फिर महाराष्ट्र के ज्योतिबा फुले का सत्य शोधक समाज – इन सब ने निकट की पिछली कुछ शताब्दियों में धर्म-

समाज इत्यादि से जुड़े बहुत सारे अन्धविश्वास, रूढ़ियों और दुराग्रहों पर सवालिया निशान लगाए, एवं उन पर बहसें शुरू कीं। जाति, समाज, शिक्षा, स्त्री-शिक्षा, सामाजिक भेदभाव, ऊँच-नीच, बाल-विवाह, सती-प्रथा, अस्पृश्यता इत्यादि को लेकर अनेक प्रश्न खड़े किए, इनके मनुष्य विरोधी चरित्र और उनमें निहित अवैज्ञानिकता का खुलासा किया। ज़ाहिर है, इन सबके अपेक्षित सकारात्मक परिणाम भी निकले। बहुत सारे बदलाव आए और उससे भी महत्वपूर्ण, आगे की ज़मीन तैयार हुई।

इन सुधारों के बारे में बहुत सारी बातें सामाजिक अध्ययन की प्रचलित पुस्तकों में भी बताई गई थीं। लेकिन उनका स्वरूप मोटे तौर पर सूचनात्मक था; सामान्य जानकारी-नुमा! ये जानकारियाँ इन आन्दोलनों के पीछे जिस तरह के प्रश्न, तर्क, बहसें, चिन्ताएँ और आरोप थे, उन्हें नहीं उभारती थीं। जबकि नवाचार के पाठों में इस तरह की कोशिशें की गई थीं। दयानन्द सरस्वती, राजा राममोहन राय, ज्योतिबा फुले, डॉ. भीमराव अम्बेडकर इत्यादि के कामों को उनके विचार और तर्कों के साथ इन पाठों में रखा गया था।

सामाजिक कुरीतियों पर संवाद

इन पाठों को पढ़ाते समय बच्चों से तरह-तरह की बातें हुईं। कुछ जगह उन्हें हँसी भी आई। खासकर,

जब मैंने पाठ में लिखी गई इस बात का ज़िक्र किया कि पहले लड़कियाँ इसलिए नहीं पढ़ती थीं क्योंकि यह मान्यता थी कि अगर लड़कियाँ पढ़ेंगी तो उनके पति मर जाएँगे! इस डर और भ्रान्त धारणा के खण्डन में जब मैंने अपना उदाहरण देते हुए यह बात जोड़ी कि अगर ऐसा होता तो मुझे तो बहुत पहले ही मर जाना चाहिए था क्योंकि मेरी पत्नी न सिर्फ मेरे बराबर ही पढ़ी-लिखी है बल्कि पास के गाँव अरलावदा के स्कूल में यही सामाजिक अध्ययन पढ़ा रही है, तो यह सुनकर, उनकी हँसी एक सामूहिक ठहाके में बदल गई! इस सन्दर्भ में मैंने विस्तार से बताया कि लड़कियों की शिक्षा के रास्ते में शुरू के सालों में कितनी सारी दिक्कतें थीं!

इस सिलसिले में अपने मानकुण्ड स्कूल का उदाहरण दिया जहाँ 1983 के पहले तक एक भी लड़की नहीं थी, पाँचवीं कक्षा के बाद सारी लड़कियाँ पढ़ाई छोड़ देती थीं! शिक्षकों के सामूहिक प्रयासों से बहुत मुश्किल से लड़कियाँ पढ़ने आने लगीं। इसी तरह सती-प्रथा के बारे में उन्होंने पाठ के ज़रिए जो थोड़ा-बहुत सुन रखा था, उसे और व्यवस्थित रूप से समझा। वैसे, यह भी सही है कि जिन सामाजिक कुरीतियों का ज़िक्र इन पाठों के सिलसिले में ज़रूरी था, उनमें से कई ग्रामीण समाज में अब भी मौजूद थीं। खासकर, बाल-विवाह, अस्पृश्यता, सामाजिक भेदभाव वगैरह। जब कक्षा में इन्हें लेकर चर्चा की तो थोड़ी-सी हलचल हुई। मुझे उसमें से ही पाठ के लिए जगह निकालनी पड़ी।

कृषि का इतिहास व वैश्विक परिप्रेक्ष्य

इसी तरह, कई सौ सालों में हुए खेती-किसानी के विकास; यूरोप, अमेरिका और भारत की खेती के फर्क; खेती की ज़मीन पर लगने वाले करों के बदलते स्वरूप और किसान की मुश्किलों के बारे में अलग-अलग पाठों से गुज़रकर बहुत विस्तार से जाना-समझा। उन्हें यह जानकर हैरानी भी हुई कि मुगल काल और उसके पहले इतनी ज़मीनें थीं कि किसान अपनी ज़मीन वैसे ही छोड़कर एक से दूसरी जगह चले जाते थे। वहीं अँग्रेज़ों के शासन काल तक ज़मीनों की कमी तो हो ही गई थी और अगर किसान किसी कारण लगान नहीं चुका पाते थे तो सरकार उनकी ज़मीनें नीलाम कर लगान वसूल करती थी। इन्हीं पाठों के दौरान बच्चे अपने घर से इस बात का पता करके आए कि अब उनके परिवार को अपनी ज़मीन पर कितना कर (लगान) देना पड़ता है।

तीनों कक्षाओं के इतिहास, भूगोल व नागरिकशास्त्र, तीनों खण्डों में खेती-किसानी के बारे में अलग-अलग तरह की जो चर्चा हुई, उससे इस विषय के सिलसिले में मेरी समग्र रूप

से एक समझ बनी। मुझे लगा कि बच्चे चूँकि गाँव के हैं और खुद खेती-किसानी से जुड़े हुए हैं इसलिए मैं अपनी उस समग्र समझ के आधार पर पिछले हज़ारों सालों में विकसित मनुष्य के इस महत्वपूर्ण व्यवसाय के बदलावों, उसकी समस्या, संकट, सीमा एवं विविधताओं को लेकर एक आधारभूत समझ बना सकता हूँ। और उन्हें कृषि को एक बड़े फलक पर देखने के लिए तैयार कर सकता हूँ। बच्चे यह तो जान चुके थे कि मनुष्य ने खेती करना किस तरह सीखा और खेती का फैलाव किस तरह धीरे-धीरे हुआ।

इसके आगे मैंने कुछ और चीज़ें जोड़ीं। जैसे, जिसका अभी उल्लेख किया कि मुगल काल तक तो हमारे यहाँ खेती योग्य ज़मीन पर्याप्त उपलब्ध थी। बाद में ज़मीनें कम होती गईं जबकि आज भी अमेरिका में आम तौर पर किसानों के पास इतनी ज़मीन है कि दवा वगैरह छिड़कने के लिए हेलीकॉप्टर का उपयोग करना पड़ता है। बोनी से लेकर कटाई तक का सारा काम बड़ी मशीनों से करना पड़ता है। रेल लाइन उनके खेतों में से जाती हैं और वे अनाज को खेत से ही मालगाड़ी में लदवा देते हैं। दूसरी ओर, जापान में ज़मीनों का

रकबा कम होता है। किसान हाथ से चलने वाली छोटी मशीनों से उन पर खेती करता है। मैंने यूरोप की खेती का भी ज़िक्र किया। जहाँ के खेतों की मिट्टी ठण्ड के कारण पत्थर जैसी सख्त हो जाती थी और खेती के लिए उसे तैयार करना उन दिनों बहुत कठिन हुआ करता था। इसीलिए वहाँ का किसान उन दिनों बहुत कम फसल ले पाता था। हमारे देश जैसी फसलों की विविधता भी नहीं थी वहाँ! इसके अलावा मशीनों का उपयोग शुरू होने के पहले अमेरिका में घोड़ों का उपयोग होता था जबकि हम बैल का उपयोग करते थे।

इसी सिलसिले में हरित क्रान्ति का ज़िक्र हुआ। उससे उत्पादन में हुई वृद्धि के साथ-साथ उससे जुड़ी दिक्कतों पर भी बात की गई। इस तरह, खेती के इतिहास के साथ-साथ खेती के राष्ट्रीय और वैश्विक परिदृश्य पर अलग-अलग पाठों में आई जानकारियों को सिलसिलेवार जोड़कर बात करना, खुद मेरे लिए काफी सन्तोषजनक रहा। बच्चों ने तो खैर बहुत दिलचस्पी ली ही! इस मामले में मेरे सामने भी यह चुनौती थी कि कृषि से जुड़ी इतनी सारी विविधताओं को लेकर बच्चों के सामने एक समग्र दृश्य किस तरह खड़ा कर पाऊँगा। और बच्चे उसे कितना समझ पाएँगे! लेकिन छोटी-मोटी कमी-खामियों के बावजूद यह किया जा सका।

आदिवासी जीवन और प्रतिरोध

एक विशेष बात थी कि इस सामाजिक अध्ययन के कई अलग-अलग पाठों में आदिवासियों की अलग-अलग तरह से चर्चा थी। अगर उनमें अमेरिका के आदिवासियों की चर्चा थी, तो सम्राट हर्ष के समय एक बिलकुल भिन्न जीवन पद्धति वाले शबर वनवासियों की भी थी। कहीं झूम खेती करने वाले आदिवासी थे तो मज़दूरी करने वाले आदिवासी भी। आदिवासी भारतीय समाज में हाशिए पर रहे हैं। आदिवासियों का जंगल से सदियों से एक सहज, स्वाभाविक और स्वतंत्र रिश्ता रहा था। वे पूरे जंगल को अपना मानते थे। इस जंगल पर निर्भर, उनकी एक स्वतंत्र जीवन पद्धति थी।

जंगल से उनके रिश्तों में बदलाव अँग्रेज़ों के आने के बाद आया। सैकड़ों सालों से जंगल पर चला आ रहा उनका अधिकार छीन लिया गया। अँग्रेज़ों द्वारा बनाए गए कानून उन्हें बात-बात पर अपराधी ठहराने लगे। उनकी स्वतंत्र जीवन पद्धति संकट में पड़ गई और अन्ततः उन्हें विद्रोह के लिए बाध्य होना पड़ा, जिस तरह किसानों को होना पड़ा था। ये पाठ बच्चों की सामाजिक और ऐतिहासिक चेतना को नया विस्तार देते थे। और इस बात को समझाने की कोशिश करते थे कि इस तरह के विद्रोह किस तरह देश के स्वतंत्रता आन्दोलन की पृष्ठभूमि तैयार कर रहे

थे जिसके चलते आखिरकार एक लम्बी लड़ाई के बाद देश को अँग्रेज़ी शासन से 15 अगस्त, 1947 को आज़ादी मिल पाई थी।

इतिहास-बोध और प्रश्नशीलता

इन पाठों के ज़रिए बच्चों की सिर्फ जानकारियाँ ही नहीं बढ़ रही थीं बल्कि उनके भीतर अपने विषय के कुछ बुनियादी तर्क भी विकसित हो रहे थे और उनके दिमाग में छोटे-छोटे ज़रूरी सवाल भी पैदा होने लगे थे। इनका सामना मुझे पाठ पढ़ाते वक्त करना पड़ रहा था। आखिर लोगों से बेगार क्यों करवाया जाता था या अगर ज़मींदार के यहाँ मोटर खरीदी जा रही थी या शरीर पर उत्पन्न हुआ कोई फोड़ा पकाया जा रहा था तो इन सबका भी कर किसान से क्यों वसूला जा रहा था वगैरह!! ऐसे सवालों का पैदा होना ही उनकी समझ बनने की शुरुआत थी। मुझे लगता है कि इसी तरह की समझ के आधार पर बच्चों में ज़रूरी किस्म का इतिहास बोध भी विकसित हो पाता है!

इतिहास पढ़ने-पढ़ाने का एक मकसद यह भी होता है कि हम यह

जान सकें कि हमारी या मनुष्य की अब तक की यात्रा किस तरह की रही है। ज़ाहिर है, यह यात्रा बहुत आसान नहीं रही है। अपनी इस यात्रा में मनुष्य कई अलग-अलग तरह के अनुभवों से गुज़रा है। अच्छे-बुरे, दोनों तरह के अनुभव। इन अनुभवों से उसने लगातार सीखा है। हर दौर की कुछ खास तरह की बहसें रही हैं। इन बहसों ने मनुष्य के भौतिक जीवन के साथ-साथ उसकी विचार प्रक्रिया को भी विस्तार दिया है। आज मनुष्य अपनी संवेदना, विचार और भौतिक विकास के जिस बिन्दु पर खड़ा है, वह इतिहास की इस लम्बी, ऊँची-नीची, टेढ़ी-मेढ़ी यात्रा के कारण सम्भव हुआ है। इतिहास का अध्ययन यही सब जानने एवं अनुभव करने के लिए है। अपने काम के दौरान मैं उन दिनों अपने अनुभव के आधार पर यह सोच पा रहा था कि इतिहास की पाठ्य-सामग्री, उसका प्रस्तुतीकरण, पढ़ने-पढ़ाने का तरीका अगर इस नवाचार के पाठों की तरह अगली कक्षाओं में भी बना रहे तो बच्चों में मनुष्य के संघर्षपूर्ण अतीत को वस्तुनिष्ठ ढंग से देख पाने वाली एक दृष्टि पैदा की जा सकती है। इतिहास द्वारा मनुष्य के निर्माण की प्रक्रिया को कहीं ज़्यादा स्पष्ट किया जा सकता है!

प्रकाश कान्त: हिन्दी से एम.ए. और रांगेय राघव के उपन्यासों पर पीएच.डी. की है। शीर्ष पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ एवं आलेख प्रकाशित। चार उपन्यास – अब और नहीं, मक्तल, अधूरे सूर्यों के सत्य, ये दाग-दाग उजाला; कार्ल मार्क्स के जीवन एवं विचारों पर एक पुस्तक; तीन कहानी संग्रह – शहर की आखिरी चिड़िया, टोकनी भर दुनिया, अपने हिस्से का आकाश, संस्मरण – एक शहर देवास, कवि नईम और मैं, और फिल्म पर एक पुस्तक – हिंदी सिनेमा: सार्थकता की तलाश प्रकाशित हो चुकी हैं। लगभग 30 वर्षों तक ग्रामीण शालाओं में अध्यापन।

सभी चित्र: हरमन: चित्रकार हैं। दिल्ली कॉलेज ऑफ आर्ट, नई दिल्ली से फाइन आर्ट्स (चित्रकारी) में स्नातक और अम्बेडकर यूनिवर्सिटी, नई दिल्ली से विज़ुअल आर्ट्स में स्नातकोत्तर। भटिंडा, पंजाब में रहते हैं।

यह लेख *एकलव्य* द्वारा प्रकाशित पुस्तक *सामाजिक अध्ययन नवाचार* से साभार।

आलू की आँख

राजेश जोशी

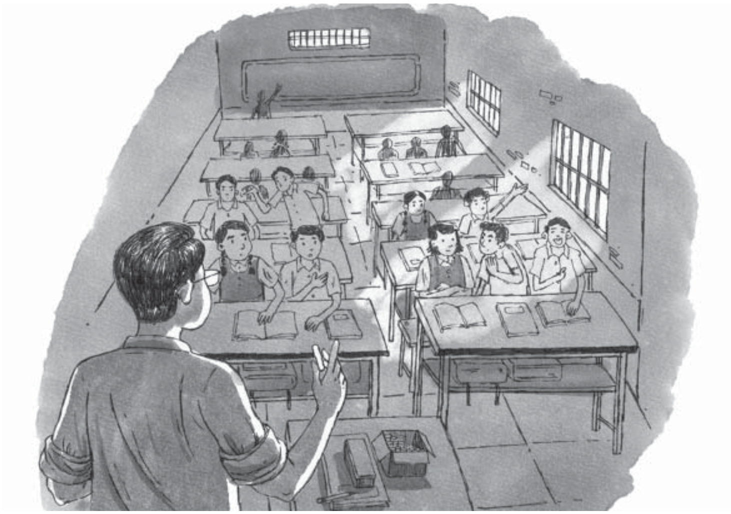

नवीं क्लास, पहला दिन, और पहला घण्टा। रातभर की बोरियत के बाद ताज़ी-टटकी सुबह थी। मैंने कहा, सुबह तुम ताज़ी ककड़ियों की तरह हो, थोड़ा-सा नमक मिल जाए तो मज़ा आ जाए। पर तभी अनुभवहीन और कम उम्र, आदर्शवादजी ने कहीं भीतर ठुमककर कहा 'तुम्हें एक आदर्श अध्यापक होना है, तुम्हें ही फैलाना है इन गाँवों में शिक्षा का प्रकाश'। अहा, शिक्षा का उजाला! महान नागरिक पैदा होने को मेरी बाट जोह रहे थे। आलू की इसी धरती से पैदा होगा कल का महापुरुष, उन तमाम समाजशास्त्रियों को धत्ता दिखाता, जो ससुरे कहते हैं - 'आलू खाने वाले क्रान्ति नहीं कर सकते'। मैं लबालब हो रहा था।

क्लास में सिर्फ बारह लड़के थे। पीछे की बैंच पर दो आदमीनुमा लड़के बैठे थे। मैंने पूछा, "आप भी नवीं में हैं?" "नहीं सर, हम तो पढ़ाई छोड़ चुके, हम तो बस आपको देखने आए थे," दोनों ने कहा। "मेरी नाक थोड़ी मोटी है, ज़रा गौर से देखिएगा," मैंने कहा, तो सब लड़के हँसने लगे। "अच्छा सर, चलें," कहकर वे जाने लगे तो मैंने पूछ डाला, "आप करते

क्या हैं?" "दूध का काम है," कहकर वे निकल गए। पाँच घण्टे लेने थे। दो लग्गत में, तीसरा खाली। खाली घण्टे में यादव प्रकट हुआ, बोला, "तुम्हारे पाँच पीरियड लगा दिए, बाकी के पास सिर्फ चार हैं।" उसकी क्लास थी, सूचना-भर देकर वह बढ़ लिया।

बीच की छुट्टी होते ही मैंने सिगरेट जलाई और बाहर निकल आया। साथ-साथ यादव, पुराणिक, वर्मा जी, और जैन साहब भी आ गए। सब चाय पीने जा रहे थे, मुझे भी वे साथ ले गए। उनकी बातें चल रही थीं, मेरे लिए सारी बातें उलझी रस्सियाँ थीं। मुझे किसकी खटिया बुननी थी, जो मैं सुलझाता? मेरे सिर्फ इतना पल्ले पड़ा कि मास्टरों के दो गुट हैं, प्राचार्य कुछ लोगों का तबादला करना चाहता है, पर डी.एस.ई. उन्हें पास नहीं फटकने दे रहा है। चाय की दूकान से उठे, तो उन्हें मेरा खयाल आया, बोले, "आप प्राचार्य से कहिए, आप ही को पाँच पीरियड क्यों दिए हैं।" वे मुझे गोट बनाना चाहते थे, जबकि मुझे अभी शतरंज के बारे में कुछ भी पता नहीं था।

वापस लौटा तो त्रिपाठीजी ने आँखें तरेरकर देखा और शर्मा के कान में कुछ कहा। शर्मा का रंग पक्का था, पक्का आबनूसी। वह बत्तीसी फैलाकर बोला, "हम तो चाय के लिए आपका इन्तज़ार कर रहे थे, आप तो अकेले-अकेले पी आए।" मैंने कहा, "और पी लेते हैं," पर वे बात उड़ा गए। उनकी बातों से पता पड़ा,

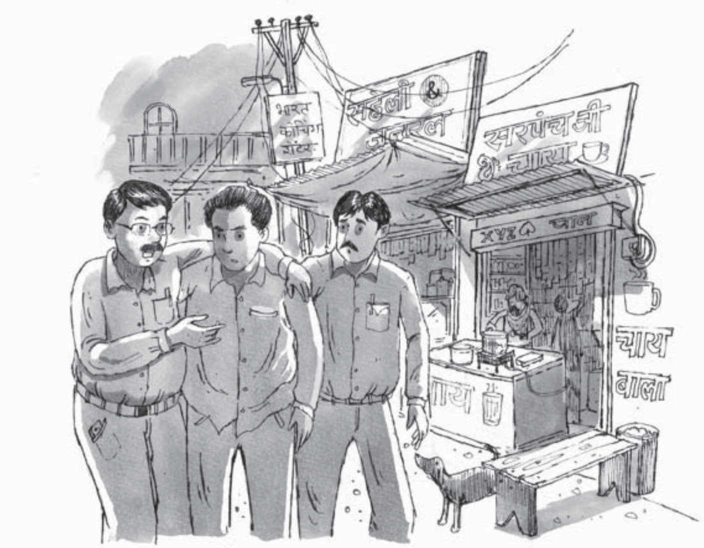

गुट दो नहीं, तीन थे। प्राचार्य का गुट अलग था। संस्कृत वाले पण्डितजी, बड़े बाबू, और गणित वाले ठाकुर साहब समेत चारों का, चौगुटा था। तिलस्म-में-तिलस्म था। मैं नया था तो सब मुझे अपने साथ खींचने में लगे थे। त्रिपाठीजी ने रहस्य समझाते हुए कहा, “इन लोगों के चक्कर में मत पड़ जाइएगा, ये सब गोलमाल में फँसे हैं, आपको भी फँसा देंगे।” मैं सोच रहा था, अब प्राचार्य का नम्बर है, पर घण्टा बज गया तो मुझे लगा कि बच गया।

सब्र किसी को नहीं था, उन्हें किसी मीठे फल की चाह नहीं थी। उन्हें आलू से मतलब था और वह उन्हें इफरात में हासिल था। प्राचार्य ने मुझे बुला भेजा। पढ़ाई की किसी को चिन्ता नहीं थी, सब मेरे लिए चिन्तित थे, काश मैं, मैं न होकर देश होता तो इस देश का ज़रूर उद्धार हो जाता। प्राचार्य ने चिन्ता ज़ाहिर की “आप नए आए हैं, आप जब से आए हैं, मुझे आप ही की चिन्ता है। इन लोगों ने सारा माहौल गंदा कर रखा है। एक यादव है, लड़कों को सर चढ़ा रखा है, और त्रिपाठी महाकौशल के हैं तो समझते हैं कि डी.एस.ई. जैसे उनकी जेब में हैं। महाकौशल वाले वैसे होते ही उजड्ड हैं। मैं तो चाहता नहीं, वरना किसके काले-पीले मुझसे छुपे हैं, पर सोचता हूँ बाल-बच्चेदार हैं और सच पूछिए तो, मेरी आदत नहीं किसी का बुरा करने की।” चपरासी बीच में झाँक गया, प्राचार्य ने बुरा-सा मुँह बनाया और कुछ बुड़बुड़ाये भी, जो मुझे समझ नहीं आया। घण्टी बजने तक उन्होंने मुझे नहीं छोड़ा। सारा दिन इसी चकल्लस में निकल गया। मैंने आदर्शवादजी से कहा ‘आलू पढ़ाओगे यहाँ?’

गुट-पर-गुट थे, गुटों की गोटें थीं, गोटों की चालें थीं, पूरा स्कूल एक शतरंज था। ज़िन्दा मोहरों का शतरंज। काश! मैं अकबर होता, इतिहास में लिखा जाता कि मैंने ज़िन्दा मोहरों का शतरंज खेला। छात्र, मास्टरों के मोहरे थे, वे गुटों के हिसाब से बँटे हुए थे। उनकी एक ही शिकायत थी, एक विषय में उनके नम्बर अच्छे आते तो दूसरे विषय का मास्टर उनका डिवीज़न बिगाड़ देता। स्कूल ही नहीं, बाज़ार की दूकानें भी बँटी हुई थीं। प्राचार्य जिस दूकान पर बैठते, उस पर त्रिपाठीजी नहीं चढ़ते, जिस पर त्रिपाठी की बैठक थी वहाँ यादव नहीं जाता। फज़ीहत लड़कों की होती। केशव के घर-दूकान पर सबका आना-जाना था, जाने का वक्त सबका अलग-अलग था, पर जाते सब थे। उसके चाचा इलाके की काँग्रेस के नेता थे, और पिता गाँव के सबसे बड़े व्यापारी थे। एक दिन उसने मुझसे पूछा “सर, आप किस गुट में हैं?” मैंने कहा, “चौथे में।” वह समझ गया मैं टाल रहा हूँ, सो वह भी टाल गया, टालमटोल में बात टल गई।

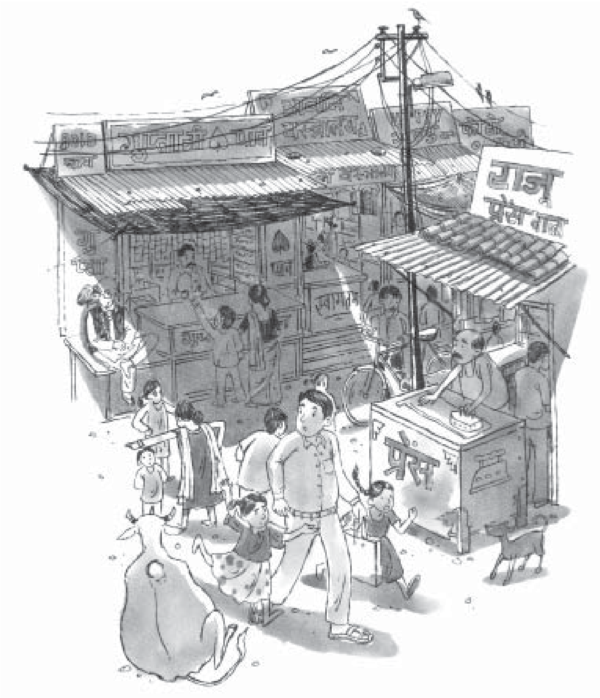

* * *

ढाबा एक ही था, और बाहर की सड़क पर था। खाना मैं वहीं खाता था। एक सब्ज़ी बनती थी, क्योंकि ढाबा उन किसानों से चलता था जो बाज़ार करने आते थे, इसलिए सब्ज़ी में मिर्च तेज़ होती। मैं मन मारकर कभी प्याज़ और नमक से रोटी खाता, कभी एक आलू उबलवा लेता। सप्ताह में दो दिन हाट लगता, उस दिन तेल की पूरियाँ बनतीं और सब्ज़ी में मिर्च और तेज़ हो जाती। ढाबे वाले लाला को बतरस का रोग था। ढाबे में मेरी जानकारी में काफी इज़ाफा हो गया था। लाला प्राचार्य से कुढ़ा हुआ था। वे हर साल स्कूल के अहाते में उगी घास बेचते थे। स्कूल के खाते का इससे कुछ लेना-देना नहीं था। इस बार की घास चाय वाले किशोरी ने पचास बढ़ाकर, छह सौ में खरीद ली थी। लाला इसी से ठना बैठा था। वह बहुत-सी बातें बताता, कि 'बड़े बाबू की बीवी और प्राचार्य में आँख-मटक्का है।' 'संस्कृत वाले पण्डितजी नौकर को भेजकर फीचर खेलते हैं, और लड़कों के ज़रिए डोरिए खरीदकर इन्दौर जाकर बेच आते हैं, कि शनिवार-इतवार वे कभी गाँव में नहीं रहते।' ऐसी ही बहुत सारी जानकारी उसने मुझे दी थी। स्कूल सारे गाँव का रंगमंच बना हुआ था। ज़मींदारी का पेंदा खिसक चुका था। छोटे धन्धे वाले और नौकरी-पेशा लोग काश्त-कारी में घुस आए थे, एक नया वर्ग पनप रहा था।

घूमते-घूमते एक दिन मैं खेतों की ओर निकल गया। मौसम मज़ेदार था, बुवाई चल रही थी। मिट्टी भुरभुरा ली गई थी। सारे खेतों के कपाल त्योरियों से भरे थे। पुराने आलुओं से निकाली गई सैकड़ों आँखों का ढेर लगा था, इतनी आँखें कि इन्द्र के बाप को भी जितनी नसीब न हुई होंगी। आलू मज़ेदार चीज़ था, आँखों

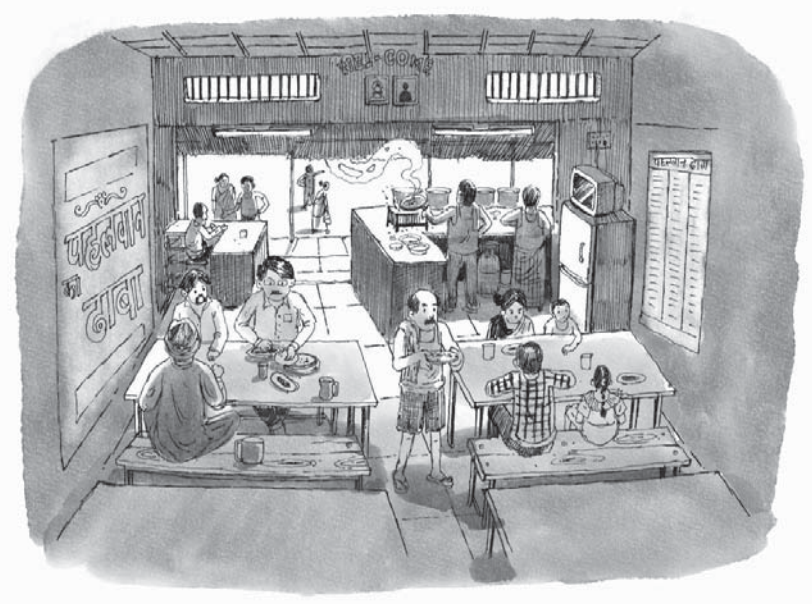

से पैदा होने वाली चीज़! अपनी ही आँख का तारा! उस रात मैंने एक सपना देखा, पृथ्वी के बराबर एक विराट आलू रस्सों से बाँधकर चारों ओर से खींचा जा रहा था। एक रस्सा प्राचार्य का गुट पकड़े था, दूसरा त्रिपाठी का गुट और तीसरा यादव का गुट। खींचतान हो रही थी। आलू की सैकड़ों आँखों से छात्र झाँक रहे थे, और गर्दनें निकाल-निकाल कर चिल्ला रहे थे 'खींचिए सर... खींचिए... ज़ोर-से...हाँ और ज़ोर-से...।' तभी मुझे लगा, मेरा दम घुट रहा है, आलू मेरी ही छाती पर घूम रहा था, गोल-गोल। मैंने चीखना चाहा, पर घिग्घी बन्ध गई, आवाज़ ही नहीं निकली।

* * *

कोहरा छाया हुआ था। नींद देर से खुली, इसलिए स्कूल भी देर से पहुँचा। स्कूल में हड़कम्प मचा हुआ था। माताराम चपरासी और प्राचार्य के बीच झगड़ा हुआ था। सब दूर उसी की चर्चा थी। घटना क्या हुई, कोई नहीं बता रहा था। सिर्फ माताराम के जुमले दोहराए जा रहे थे। 'तुम्हारे बाप के नौकर नहीं हैं। सरकारी मुलाज़िम हैं।' या 'तुम्हारा सारा काला-पीला ढाँकें और हमीं को आँखें तरेरते हो'। प्राचार्य विरोधियों के लिए माताराम अचानक ही हीरो हो गया था। यादव बेहद खुश था, कि प्राचार्य का अपमान हुआ। वह खेल के सामान की खरीद के गोलमाल में फँसा हुआ था। सामान नहीं आया था, सिर्फ रसीदें आई थीं और मौका पाते ही

प्राचार्य ने यादव को पटखनी दे मारी थी। वह तभी से ताक में था कि मौका मिले और वह अपना हिसाब पूरा करे। एक मौका हाथ आते-आते फिसल गया था। प्राचार्य के यहाँ कथा थी, उसने एकाउन्टेन्ट से मिलकर फीस के रुपयों में से कुछ माल निकालना चाहा था, तय था कि अगले महीने पूरा कर देंगे। पर इसी बीच दोनों में चिकचिक हो गई, सब को खबर लग गई, पर रुपये तब तक निकले नहीं थे। इसी से यादव उस बार गच्चा खा गया।

स्कूल कहने को तो नया था पर प्रयोगशालाओं की हालत काफी खस्ता थी। गिनती की चार डिसेक्शन ट्रे थीं, जिनके भी मोम उखड़ चुके थे। न क्लोरोफॉर्म था, न मेंढक थे। किसी लड़के ने आज तक मेंढक नहीं काटा था। मेंढक ज़रूर प्राचार्य से खुश होंगे। ग्यारहवीं क्लास में एक इकलौती लड़की थी, नाम तो पद्मावती था, पर मेंढक चीरने के नाम पर ही उसे उबकाइयाँ आने लगतीं। ये लोग क्या खाक बायोलॉजी पढ़ेंगे। मैं मन-ही-मन कहता, 'आलू काटो आलू, मेंढक काटना तुम्हारे बस की बात नहीं!' कई बार मैं प्राचार्य से कह चुका था, कि सामान मँगाना पड़ेगा। वे हर बार 'हाँ-हाँ' करते और भूल जाते। यादव ने कहा, "तुम उसे बता दो, उसे कितना हिस्सा मिलेगा, वह आज ही मँगा देगा।" मैं भरा बैठा था, मैंने कहा, "जो मेंढक आएँगे, उनमें से दस-पाँच का अचार डलवाकर मैं प्राचार्य को भेज दूँगा।" "प्राचार्यन उसे घर से निकाल देगी," कहकर वह ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगा।

सुबह से ही सर भन्ना रहा था। पैसे एकदम खत्म हो गए थे। सारा गुस्सा लड़कों पर फूट पड़ा। क्लास में घुसते ही मैंने ताबड़तोड़ कई सारे प्रश्न लड़कों से पूछ डाले। किसी से उत्तर नहीं बना। मैं बिफर गया। लड़के सहम गए, वे मेरा गुस्सा पहली बार देख रहे थे। मैं चीखा, "तुम लोग ज़िन्दगीभर पास नहीं हो सकते, अगर कल से पढ़कर नहीं आओगे तो किसी को क्लास में नहीं घुसने दूँगा।" लड़के चुप्पी साधे बैठे रहे। झुँझलाता हुआ मैं घण्टा बजने से पहले ही बाहर आ गया। आदर्शवादजी ने ऊँट-सी गर्दन उठाकर कहा, 'कहिए मास्साब, खिसक गई हवा?' क्लास से बाहर आया ही था कि यादव ने पीछे से कन्धा थपथपाया, "अच्छा ताना तुमने, तानते रहो ऐसे ही दो-चार दिन, फिर देखो ट्यूशंस का ढेर लग जाएगा।" बेहद तेज़ गुस्सा आया, 'सबको साले अपने जैसा ही समझते हैं, मुझे नहीं चाहिए ट्यूशंस।' मैं चीखना चाहता था, पर कह कुछ नहीं पाया, वही बोलता रहा, "यहाँ के दूकानदार और पटेल एकदम झक्की हैं, सनक है सालों को कि लड़का किसी तरह दसवीं हो जाए। अपने बाप का क्या जाता है, सबके पास दो नम्बर की रकम है, इम्तहान के बाद

देखना कैसी लाइन लगी रहती है, पैसा लो नम्बर बढ़ाओ, मास्टरों का चेत तो तभी कटता है।" मैं मन-ही-मन कुढ़ रहा था। मैंने फिर भी कहा, "ऐसे पास होने से लेकिन क्या फायदा?" वह चिढ़ गया, 'फायदे को मारो गोली। हमने कोई ठेका लिया है, किसे फिक्र है इस बात की? पैसा चाहिए सबको पार्टनर, मास्टरों को मिलता ही क्या है?" उससे तर्क करना मेरे बस का रोग नहीं था। जैसे-तैसे मैंने अपना पिण्ड छुड़ाया और चल दिया।

दो-चार दिन दिमाग पर मन्दी का दौरा रहा।

उज्जैन हो आने की इच्छा कुलाँचें मार रही थी। एक दोस्त की चिट्ठी आई थी, कि उपकुलपति के खिलाफ आन्दोलन होने वाला है। आग सुलग चुकी है, कभी भी विस्फोट हो सकता है। सब कमर कसे बैठे हैं। मुझे लगा, वहाँ जंग छिड़ने को है और यहाँ मैं टुच्ची झड़पों में फँसा हूँ। आदर्शवादजी मौका मिलते ही दिमाग में दण्ड पेलने लगते। बर्दाश्त से जब बाहर हो गया तो एक दिन मैंने आदर्शवादजी की गरदन मरोड़कर उनके घुटनों में डाल दी। किस्सा-खतम-माल-हज़म।

शाम शानदार थी, मैंने केशव को पकड़ा और उससे एक पव्वा ले आया। दूसरे दिन यादव ने मिलते ही एक तिरछी मुस्कान मारी, मैं थोड़ा खिसिया गया। याने खबर लग गई लोगों को।

* * *

स्कूल के साथ ही एक मिडिल स्कूल और था। प्राचार्य उसकी हेडमास्टरी भी सम्भाले हुए थे। उन्हें पैसा मिले तो वे पूरे राष्ट्र की शिक्षा का भार अपने कन्धों पर उठा लें। अभी मुझे आए आठ-दस दिन ही हुए थे। प्राचार्य ने एक दिन प्रस्ताव रखा कि "आप अगर मिडिल स्कूल का काम सम्भाल लें तो इधर हम दो पीरियड फ्री कर देंगे। करना-धरना कुछ नहीं है।" उन्होंने समझाया, "सिर्फ सुबह आकर राउण्ड लगा लें, और मास्टरों की ड्यूटी लगा दें, बस्स।" मैं शायद तैयार हो जाता पर यादव ने बताया कि प्राचार्य को इस काम का अलग से साठ रुपए एलाउन्स मिलता है। और वह तकरीबन हर मास्टर से इस बारे में बात कर चुका है। प्राचार्य दो-तीन दिन मेरे जवाब का इन्तज़ार करते रहे और मैं उनसे कटता रहा। लेकिन एक दिन उन्होंने बुला भेजा, छूटते ही बोले,

— तो कल से आप देख लीजिए मिडिल स्कूल का काम!

— मुझसे नहीं होगा, मैं सुबह देर से उठता हूँ (बाद का वाक्य मैं नहीं बोलना चाहता था पर निकल गया)।

— क्या तकलीफ है आपको? आप अभी जवान आदमी हैं, सुबह-सुबह आपका घूमना-फिरना भी हो जाएगा। (वे हँसने लगे)

— अगर एलाउन्स मिले तो मैं आ

सकता हूँ। (मैं एक ही साँस में बोल गया और अन्दर-ही-अन्दर एक खुशी और खीज से भर गया)

उन्होंने लम्बी-सी 'हूँ' की और चुप। चुप्पी तन गई।

मैं समझ गया कि ठन गई।

छुट्टी की घण्टी बजती, इससे पहले ही ठनठनाता आदेश आया। "बागवानी का एक पीरियड और बढ़ गया।" सबके भेजों में अगर बगीचे न लगवा दिए तो मेरा भी नाम नहीं। प्राचार्य खिसक लिया था। ज़बान पर चण्डी सवार थी। कोई हत्थे नहीं लगा, तो कमरे पर पहुँचते ही मट्टू को खत लिखा। प्राचार्य के सम्मान में जी भरकर गालियाँ लिखीं और लिख दिया कि अब इस नौकरी का भरोसा नहीं। मैंने सोचा, मास्टरी पर एक नीति कथा लिखूँगा, अन्त में लिखूँगा एक नीति वाक्य कि इस कथा से सीख लो, अगर मास्टरी करना है, तो धूर्त और काईयाँ बनो, वरना शिक्षा के क्षेत्र में घुसे बैठे आलू के व्यापारी तुम्हें आलू की टिकिया बनाकर, चाट की तरह खा जाएँगे।

* * *

दूसरा दिन। सुबह की हवा ने मेरी अकल के सारे रोशनदान खोल दिए थे। मैं प्राचार्य की तख्ती को घूरते हुए, अन्दर घुसा। (सावधान! अधम प्राणी, तेरा अन्तकाल आ पहुँचा।)

— मुझे फावड़े-गेंती चाहिए।

— क्यों-क्यों, फावड़े-गेंती का क्या कीजिएगा? (वे अचकचा गए)

— बागवानी कराऊँगा, मैदान में बहुत जगह है, सारी घास खुदवा देंगे (और खोद डालूँगा तुम्हारी आमदनी का ज़रिया)।

— क्यों चक्कर में पड़ते हैं आप? थोड़ा-बहुत किताब से पढ़ा दीजिएगा, बाग-वाग की कौन देख-रेख करेगा, छुट्टियाँ होने वाली हैं। खाद-पानी, सौ चकल्लसें हैं (प्राचार्य की हवाइयाँ उड़ने लगीं, मेरे अन्दर का मास्टर चिल्लाया, यही मौका है, अड़ जाओ, मैं अड़ गया)।

— सब हो जाएगा, आप फिक्र न करें, स्टूडेण्ट कर लेंगे।

— अरे मास्साब, फावड़े-गेंती कहाँ रखे हैं स्कूल में...। (वे पिण्ड छुड़ाना चाहते थे, उन्हें यह आशंका नहीं थी कि बात उल्टी गले पड़ जाएगी) आप तो किताब से पढ़ा दीजिए।

— नहीं, क्राफ्ट का मतलब ही फिर क्या हुआ? गाँव से मैं फावड़े-गेंती मँगवा लूँगा...

मैं कहकर निकल आया। मुझे सोच-सोच कर मज़ा आ रहा था। मैंने यादव को पकड़ा और किशोरी की दूकान पर चला गया। चाय पी, और चलते-चलते मैंने किशोरी को सुनाते हुए, यादव से कहा, "सोमवार से बागवानी शुरू करवाना है, सारी घास खुदवानी पड़ेगी, कहीं से फावड़े-गेंती का इन्तज़ाम करना है।" किशोरी ने सुना तो उसके कान खड़े हो गए।

उसके हाथों की बेचैनी साफ-साफ नज़र आ रही थी। दो दिन की छुट्टी थी, मन एकदम हल्का-हल्का हो गया। मैंने सोचा, लगे हाथ उज्जैन हो आऊँ, देख आऊँ, लोहा कितना गरम हुआ।

रात को उज्जैन पहुँच पाया, सारे शहर में कर्फ्यू लगा हुआ था। एकदम सन्नाटा था, सिर्फ ठलुए जगह-जगह घूम रहे थे। तो अण्डा फूट गया! 'हाँ'। गदर विश्वविद्यालय परिसर से शुरू हुआ था और शहीद पार्क पर भी छात्रों और पुलिस के बीच जमकर पत्थरबाज़ी हुई थी। पुलिस वाले हवा में अभी भी लट्ठ भाँजते घूम रहे थे। कई छात्र घायल हुए थे और कई जेल में थे। रास्ते में कई जगह पुलिस वालों ने मुझे रोका, बस का टिकिट दिखा-दिखा कर किसी तरह फ्रीगंज पहुँचा, सोचा था दो दिन ऐश करूँगा, पिक्चर और मटरगश्ती होगी। पर कुछ न हुआ। बस, तनाव तना रहा। वापस लौट रहा था तो इन्दौर बन्द था, आन्दोलन फैल रहा था।

घास मैं नहीं खुदवा पाया। मेरे पहुँचने से पहले प्राचार्य मेरी जड़ें खोद चुका था। इन्दौर जाकर वे मेरे तबादले का आदेश ले आए थे। उज्जैन से लौटते ही, मैं उलटा दिया गया। ऐन बीच महीने में मेरा तबादला हो गया। मेरे पास यूँ ही पैसे नहीं थे, कुछ लोगों का उधार भी चढ़ गया था, पर कोई चारा नहीं था। प्राचार्य विरोधी भी कन्नी काट रहे थे। मैं समझ गया, सबके पेंदे हिल गए हैं, मैं सबसे कमज़ोर कड़ी था, मुझे उलटाकर प्राचार्य ने फिलहाल अपने विरोधियों की हवा खिसका दी थी। लड़के मिलने आए, मैंने लड़कों से कहा, "रात कमरे पर आना, मैं कल जाऊँगा।"

मैं शाम से ही बेचैनी से लड़कों का इन्तज़ार कर रहा था। रात को अधिकांश लड़के आ गए, तो मुझे तसल्ली हुई। मैंने खूब बढ़ा-चढ़ा कर उन्हें उज्जैन के छात्र आन्दोलन के किस्से सुनाए। और लताड़ा कि तुम लोग आग के बगल में बैठकर चुप हो। उन्हें चढ़ाया, वे चढ़ गए। केशव तैयार हो गया तो सारे लड़के तैयार हो गए। उन्होंने कहा, "आप जैसा-जैसा बताएँगे, हम वैसा-वैसा कर लेंगे।" सारा कार्यक्रम तय हुआ। पर मेरे मन में अब भी बेचैनी थी, पता नहीं लड़के कल तक अपनी बात पर कायम रहेंगे या नहीं, पर अन्दर का मास्टर उछल-उछलकर चिल्ला रहा था- 'सावधान आलुओं! मैं तुम्हारी जड़ों में आग फूँककर जा रहा हूँ, अब पूरी दुनिया थुलथुलाती बादी से मुक्त होकर रहेगी'।

सुबह। हवा में हल्की थी, पर बढ़िया चमकीली धूप निकली थी। अपना सामान उठाकर, मैं पेड़ तक आ गया। सामान उतना ही था, जितना मैं लेकर आया था। बस खड़ी थी, वही मज़ेदार बस, जिसने पहली बार मुझे यहाँ पहुँचाया था। सीट इस

बार आराम-से मिल गई। कंडक्टर पास आया तो मैंने थोड़ी ऊँची आवाज़ में कहा, “एक देपालपुर।” कहकर मैंने कंडक्टर को देखा, पर उम्मीद के खिलाफ, वह अचानक हँस पड़ा। बस चल पड़ी। बाज़ार बन्द था। स्कूल के बाहर लड़के शोर कर रहे थे, नारे गूँज रहे थे। “विदा आलुओं, विदा आलू के पट्ठों!” मैंने खिड़की से झाँककर कहा।

एक ही दुख था, डोरिया नहीं खरीद पाया।

राजेश जोशी: हिन्दी के लेखक, कवि और नाटककार हैं। अपने कविता संग्रह *दो पंक्तियों के बीच* के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित। इसके अलावा मुक्तिबोध पुरस्कार, माखन लाल चतुर्वेदी पुरस्कार, श्रीकान्त वर्मा स्मृति सम्मान से नवाज़े जा चुके हैं। इनकी कविताएँ अँग्रेज़ी, रशियन, जर्मन, उर्दू और कई भारतीय भाषाओं में अनुवादित हो चुकी हैं। भोपाल में रहते हैं।

सभी चित्र: शुभम लखेरा: स्वतंत्र चित्रकार हैं। गवर्नमेंट फाइन आर्ट कॉलेज, ग्वालियर से पेंटिंग में स्नातक। रियाज़ अकादमी, भोपाल से इलस्ट्रेशन का कोर्स। पिछल 8 सालों से बाल पत्रिकाओं के लिए चित्रकारी कर रहे हैं। डकबिल, तूलिका, चाइल्ड फंड इंडिया, एनसीईआरटी, नवनीत, एकलव्य, एलएलएफ, रूम टू रीड जैसे कई प्रकाशनों के साथ काम किया है। फिलहाल, अपने शहर चंदेरी, म.प्र. में रह रहे हैं।

दूसरी कहानी

ईश्वर की कहानियाँ

विष्णु नागर

एक दिन ईश्वर एक मज़दूर के यहाँ अचानक पहुँचे। उन्हें अतिथि जानकर उसने उनकी खूब आवभगत की।

ईश्वर उस पर बहुत मेहरबान हुए। वे चुपचाप दरी के नीचे सोने के कुछ सिक्के छोड़ आए।

बाद में मज़दूर की पत्नी ने दरी समेटी तो सिक्के निकले। उसने अपने पति को बताया। मज़दूर ईश्वर को ढूँढने निकला। जहाँ-जहाँ उनके होने की सम्भावना हो सकती थी, वहाँ-वहाँ गया। वह क्या जानता था कि ये ईश्वर थे।

थक-हारकर वह सोने के सिक्के थाने में जमा कर आया और बदले में पुलिस की मार खा आया।

ईश्वर को जब मज़दूर की इस मूर्खता का पता चला, तो वह खूब क्रोधित हुए।

उन्होंने अगले ही दिन उसकी छँटनी का नोटिस भिजवा दिया।

विष्णु नागर: बचपन और छात्र जीवन शाजापुर, मध्य प्रदेश में बीता। सन् 1971 से दिल्ली में स्वतंत्र पत्रकारिता। *नवभारत टाइम्स* तथा *दैनिक हिंदुस्तान, कादंबिनी, नई दुनिया* और *शुक्रवार समाचार* साप्ताहिक से जुड़े रहे। भारतीय प्रेस परिषद के पूर्व सदस्य एवं महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा की कार्यकारिणी के पूर्व सदस्य। वर्तमान में स्वतंत्र लेखन।

चित्र: कैरन हैडॉक: शोधकर्ता, शिक्षिका, वैज्ञानिक, अध्यापिका और चित्रकार। उन्होंने अमेरिका में बायोफिज़िक्स में अपनी पीएच.डी. और पोस्टडॉक्टरल अध्ययन पूरा करने के बाद भारत में काम शुरू किया। अपने सभी प्रयासों में, उनका प्रमुख सरोकार समाज के वंचित वर्गों के प्रति रहा है, और वे सामाजिक परिवर्तन के लिए कला और विज्ञान शिक्षा - दोनों का उपयोग करती रही हैं।

यह कहानी हरियाणा राज्य संसाधन केन्द्र द्वारा तैयार की गई विष्णु नागर की किताब *ईश्वर की कहानियाँ* से साभार।

सवालीराम

सवाल: दुकानों के सामने नींबू-मिर्च क्यों लटकाया जाता है?

– कृतिका, कक्षा-3, उज्जैन, म.प्र.

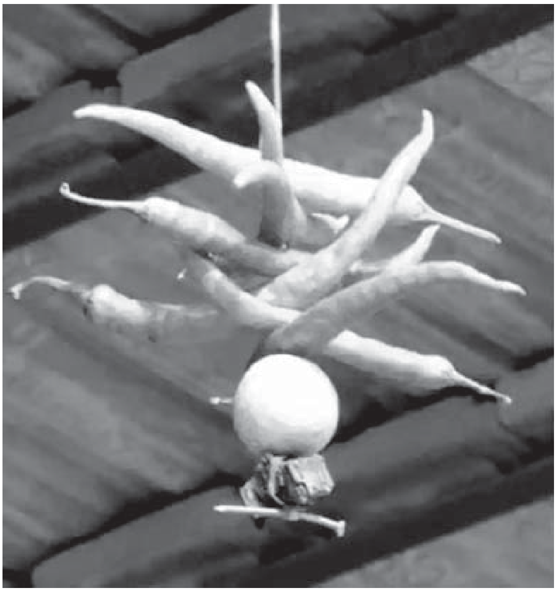

जवाब: आपने अक्सर मकानों, भवनों व दुकानों के बाहर सात मिर्च और एक नींबू को धागे में पिरोकर दरवाज़े पर लटकते हुए देखा होगा। इसे 'नज़रबट्टू' कहते हैं और यह खासकर भारत में हिन्दू समुदाय के लोगों के घरों में अक्सर देखने को मिल जाता है।

भारतीय एवं पाश्चात्य मान्यताओं में 'बुरी नज़र' को एक ऐसी शक्ति माना जाता है, जिससे व्यक्ति की तरक्की बाधित होती है। ऐसा माना जाता है कि नज़र लगने पर अच्छा-भला, खुशहाल चलता हुआ जीवन विभिन्न प्रकार की आर्थिक, शारीरिक और सामाजिक परेशानियों से घिर जाता है।

नज़र लगने की अवधारणा पता नहीं कितनी पुरानी है, लेकिन इतिहासकार और पुरातत्वविद् इसका

मुख्य स्रोत मेसोपोटामिया और प्राचीन मिस्र को मानते हैं। नज़र लगने के सबसे पुराने लिखित प्रमाण लगभग 3,000 ईसा पूर्व के सुमेरियन ग्रन्थों में मिलते हैं। यहाँ के लोग मानते थे कि कुछ लोगों की आँखों में विनाशकारी शक्तियाँ होती हैं। सुमेरियन कीलाक्षरी लिपि में लिखी गई मिट्टी की पट्टिकाओं (Cuneiform tablets) पर ऐसे मंत्र मिले हैं, जो 'बुरी नज़र' से बचने के लिए लिखे गए थे।

भारत के सन्दर्भ में, सिन्धु घाटी सभ्यता के अवशेषों में भी ऐसे कई ताबीज़ और मनके मिले हैं, जिनके बारे में माना जाता है कि उनका उपयोग लोग अपनी सुरक्षा और बुरी नज़र से बचने के लिए करते होंगे।

बुरी नज़र से बचाव के लिए नींबू-मिर्च लटकाने को सुरक्षा का उपाय माना जाता है। इस पर थोड़ा विचार करते हैं।

पौराणिक कारण

पौराणिक कथाओं और लोक मान्यताओं के अनुसार, इसका मुख्य कारण अलक्ष्मी से जुड़ा है। अलक्ष्मी, धन की देवी लक्ष्मी की बड़ी बहन मानी जाती है, लेकिन उसका स्वभाव और गुण लक्ष्मी के बिलकुल विपरीत है। पद्म पुराण के अनुसार, जहाँ धन की देवी लक्ष्मी को मीठा और फल पसन्द है, अलक्ष्मी को तीखा और खट्टा भोजन पसन्द है।

अलक्ष्मी को दरिद्रता और कलह की देवी माना जाता है। मान्यता है कि जब अलक्ष्मी किसी घर या दुकान के दरवाज़े पर आती है, तो वह बाहर लटके हुए नींबू (खट्टा) और मिर्च (तीखा) को देखकर वहीं रुक जाती है। वो अपनी पसन्द का भोजन पाकर सन्तुष्ट हो जाती है और बाहर से ही लौट जाती है। इस तरह घर के अन्दर की सुख-समृद्धि सुरक्षित बनी रहती है।

धार्मिक किताबों की दुकानों पर उपलब्ध लाल किताब जैसी टोना-टोटके की पुस्तकों में इस तरह के उपाय – जैसे नींबू-मिर्च दरवाज़े पर लटकाना, नकारात्मक ऊर्जा को रोकना और अन्य कई सारे उपायों का ज़िक्र मिलता है। आम तौर पर इस टोटके को शनिवार या मंगलवार को बदला जाता है।

वैज्ञानिक नज़रिया

नींबू-मिर्च दरवाज़े पर लटकाना एक मान्यता मात्र है। इसके पीछे किसी भी प्रकार का कोई वैज्ञानिक कारण नहीं है। परन्तु दूसरी ओर, यह आवश्यक भी तो नहीं है कि हर चीज़ विज्ञान के दायरे में आए। और रही बात नज़र की, तो हमारी आँखों से ऐसा कोई तेज़ नहीं निकलता है जो किसी वस्तु या व्यक्ति को नुकसान पहुँचा सके। ऐसा केवल टेलीविज़न पर शक्तिमान जैसे धारावाहिक एवं ऐसी ही फिल्मों में ही सम्भव है।

अब यदि बात करें सकारात्मक या

नकारात्मक ऊर्जा की, तो ऊर्जा तो ऊर्जा होती है; इसे सकारात्मक या नकारात्मक नहीं कहा जा सकता। वैज्ञानिक नज़रिए से यह महज़ एक अन्धविश्वास है, जिसे लोग बिना किसी ठोस आधार और सोच के मानते आ रहे हैं।

मनोवैज्ञानिक कारण

मनोविज्ञान के अनुसार, ऐसी परम्पराएँ लोगों के भीतर सुरक्षा और सन्तोष का भाव पैदा करती हैं। जब एक इन्सान अपनी दुकान के बाहर नींबू-मिर्च लटकाता है, तो उसे मानसिक रूप से यह सन्तोष रहता है कि उसकी मेहनत और बरकत 'बुरी नज़र' से सुरक्षित है। यह उसे आत्मविश्वास के साथ अपने काम को बेहतर ढंग से करते रहने में मदद करता है।

चाहे हम नींबू-मिर्च लटकाने को एक प्राचीन परम्परा या लोक-विश्वास का परिणाम मानें, या फिर नज़र को दूर रखने का एक मनोवैज्ञानिक सुरक्षा साधन कहें, नींबू-मिर्च लटकाने की यह मान्यता काफी पुरानी है।

नींबू-मिर्च दरवाज़े पर बाँधने का उद्‌देश्य घर की सुख-शान्ति और सकारात्मकता को बनाए रखना है। ऐसी कई चीज़ें हम केवल अपनी मानसिक शान्ति के लिए करते हैं– चाहे वह प्रार्थना हो या ध्यान। ये हमारी दिनचर्या का हिस्सा बन जाते हैं और हमें मानसिक सन्तोष का अनुभव कराते हैं।

यदि आप भी अपने घर में नींबू-मिर्च लटकाते हैं और आपके पास इसका कोई अन्य कारण है, तो हमें ज़रूर बताएँ।

हिमांशु बावनकर: *संदर्भ* पत्रिका से जुड़े हैं। ज़मीनी हकीकत व सामाजिक मुद्‌दों पर चर्चा करने में गहरी रुचि।

इस बार का सवाल: वर्षा आने पर चींटियों और दीमक के पंख क्यों निकल आते हैं?

- आश्रमशाला बीजूधावड़ी, धारणी, ज़िला - अमरावती, महाराष्ट्र

आप हमें अपने जवाब sandarbh@eklavya.in पर भेज सकते हैं।

प्रकाशित जवाब देने वाले शिक्षकों, विद्यार्थियों एवं अन्य को पुस्तकों का गिफ्ट वाउचर भेजा जाएगा जिससे वे पिटाराकार्ट से अपनी मनपसन्द किताबें खरीद सकते हैं।

RNI No.: MPHIN/2007/20203

फोटो: देवेन्द्र ससने

प्रकाशक, मुद्रक, टुलटुल बिस्वास द्वारा निदेशक एकलव्य फाउण्डेशन की ओर से, एकलव्य, जमनालाल बजाज परिसर, जाटखेड़ी, भोपाल - 462 026 (म.प्र.) से प्रकाशित तथा भण्डारी प्रेस, ई-2/111, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462 016 (म.प्र.) से मुद्रित, सम्पादक: राजेश खिंदरी।